महामंत्री चाणक्य

: १ :

सामने यह जो टेक्सला के खण्डहर हैं इन्हें देखकर बहुत-से लोगों ने बहुत-सी बातें सीखी हैं—कितने ही राजाओं का इतिहास। प्राचीन भारत की सभ्यता। उस समय का वैभव, शान और शौकत। वह समय—जब सारा संसार इस देश को पूजा और श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। जब स्वर्ण और माणिक्य इसके साधारण घरों में जगमगाते थे और चांदी जगह-जगह चमचम करती थी।

यह खण्डहर एक दिन आलीशान शहर था और तब इसका नाम था तक्षशिला। मन की आंखों से इस विशाल नगर को देखिये जहां यूनानी सिकंदर के हमले के समय महाराज आम्भी राज करते थे। आम्भी—सिकंदर के साथ सुलह करके उसकी फौजों को तक्षशिला में ले आये और तक्षशिला के विशाल नगर द्वार में दाखिल होते समय यूनान के सिकंदर ने एक स्वप्न देखा—उसने देखा कि आम्भी की तरह भारत के सारे राजा और महाराजा एक-एक करके उसके चरणों में गिर रहे हैं। देखा कि इन छोटे-छोटे राजाओं की आपसी शत्रुता ही उनके विनाश का कारण होगी। भारत की स्वतंत्रता के इस विनष्ट खण्डहर पर यूनानी साम्राज्य का झण्डा फहरायेगा। सिकंदर ने यह सब कुछ देखा, सोचा और समझा।

और इसी समय तक्षशिला से थोड़ी ही दूर हरिपुर की पहाड़ियों में एक साधारण-सा ब्राह्मण दुनिया की सब बातों को भूलकर अपनी छोटी-सी चक्की में खोया जा रहा था। पहाड़ी

नाले के किनारे बनी हुई छोटी-सी झोंपड़ी। ब्राह्मण की पर्ण-कुटीर। एक शिला पर बैठी हुई वह छोटी-सी लड़की गा रही थी। आकाश की परियों का गीत। उन में से एक परी नीचे उतरी हाथ में वीणा लेकर वह गाने लगी। गाती चली गई, एक गली से दूसरी गली में। एक नगर से दूसरे नगर में। एक देश से दूसरे देश में। सारा संसार उसके गीतों से गूंज उठा। नृत्य से मतवाला हो उठा। संसार में प्रेम और प्यार की नदी बह चली। शत्रुता मिट गई। वैमनस्य मिट गया। लालच मिट गया।—यह सब कुछ वह गा रही थी, और उसके पिता—वह सीधे से ब्राह्मण—उसे देख-देखकर फूले नहीं समाते थे। उनकी बड़ी बड़ी आंखों में आह्लाद नाच रहा था। उनके उस चेहरे पर, जो शायद और किसी समय गंभीर और भयंकर रहा हो; इस समय तो बच्चों जैसी मधुर और मुग्ध मुसकान खेल रही थी। अपने-आपको और न संभाल सकने के कारण उन्होंने प्यार से दोनों भुजाएं फैला दीं—और पिता के पूरे प्यार से मुग्ध स्वर में बोले——'माया'

माया दौड़कर उनके पास आयी। उनकी छाती के साथ सिर लगाकर, उनके गले में अपनी छोटी-छोटी बाँहें डालकर बोली—"बाबा जी—मेरे बाबा जी!"

ब्राह्मण उसे और भी जोर से छाती के साथ लगाकर उस के माथे को चूमते हुए बोले—"बेटी—मेरी बेटी" और फिर उसे सामने खड़ा करके उसके कंधों पर हाथ धर कर बोले—"माया! अब तो बहुत देर हो गई। तू दूध पी ले। सो जा तो मैं पढ़ाने जाऊं। नीचे पाठशाला में विद्यार्थी मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

माया उनके गले में फिर से बाँहें डाल कर बोली "ना, बाबा, मैं जानती हूँ—आप को देखते ही उन बेचारों के प्राण निकल जाते हैं। आप उन्हें इतना डराते हैं—धमकाते हैं—ऐसा

भी पढ़ाना क्या हुआ। यहीं रहिए मेरे पास !"

ब्राह्मण हँसते हुए बोले—हाँ, डराता भी हूँ-धमकाता भी हूँ—विष्णुगुप्त चाणक्य के सामने आंख उठा सके ऐसा आदमी दुनिया में अभी पैदा नहीं हुआ !"

माया परे हट कर बोली—" बहुत अच्छी बात करते हो ना—बेचारों की भय के मारे जान निकलती है। अच्छा बाबा, जब मुझे पढ़ाओगे तो भी धमकाया करोगे ?"

चाणक्य हँसकर बोले—"तुझे डरा या धमका सकूं— ऐसी शक्ति मुझमें नहीं है बेटा। तेरी ओर देखते ही मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे तू ही मेरा सारा संसार है—मेरा प्राण— मेरा ईश्वर—मेरा भूत और भविष्य—अच्छा देख, अब दूध पी और सो जा—तू जब जागेगी तो मैं पढ़ा कर वापस आ जाऊंगा। चल कुटिया में चल।"

माया ने उनकी अँगुली पकड़ कर कहा—"अच्छा, चलो— लेकिन—लेकिन आज किसी विद्यार्थी को मारना मत।"

चाणक्य हँसते हुए कुटिया के अन्दर चले। सामने एक पत्थर आ गया। उससे बचने के लिए उन्होंने माया को गोद में उठा लिया। झोंपड़ी के भीतर जाकर उसे खाट पर बिठा दिया। और पास ही रखा हुआ दूध का प्याला उसके मुंह से लगा दिया। दूध पीकर माया ने कहा—"अब जाओ बाबा, मैं सो जाऊंगी।"

चाणक्य उस पर कपड़ा ओढ़ाकर थपथपाते हुए बोले— "पहले तुम सो जाओ। फिर मैं जाऊं।" और तब वह गुनगुनाने लगे—

सो जा रानी बिटिया सो जा
सो जा नन्हीमुन्नी सो जा
सो जा प्यारी बिटिया सो जा

सो जा राजदुलारी सो जा
सो जा मधुर स्वप्न में खो जा
सो जा रानी बिटिया सो जा

उनकी इस गम्भीर गुनगुनाहट के साथ-साथ माया की आँखें बन्द हुईं। वह अपनी गाल के नीचे हाथ रख कर सो गई। चाणक्य ने एक बार लम्बी सांस लेकर कहा—"अगर तेरी मां जीती होती माया—तो मैं कितना निश्चिन्त रहता।" लेकिन साथ ही उन्होंने छत की ओर देखकर, जैसे वह माया की स्वर्गीया मां से बात कर रहे हों, कहा—"मैं उसे कोई तकलीफ तो नहीं होने देता। तुम्हारी माया मेरे सारे प्यार का केन्द्र है—और सारे ध्यान का। मैं उसकी मां भी हूँ—उसका बाप भी। यह सब देख कर तुम सुखी होती हो ना माया की मां! माया का ब्याह करके। उसे अच्छी तरह बसा कर मैं भी तुम्हारे पास स्वर्ग में आऊंगा। तब तक स्वर्ग से ही अपनी माया की रक्षा करना!" और तब एक बार माया का माथा चूमकर कपड़े को अच्छी तरह उढ़ाकर वह झोंपड़ी से बाहर आ गये और उस पगडण्डी से नीचे उतरने लगे जो पहाड़ की तराई में जाती थी।

: २ :

पहाड़ की गोद में एक बहुत बड़े वृक्ष के नीचे अपने-अपने आसन बिछाकर कुछ नौजवान लड़के बैठे हुए थे। वृक्ष के साथ गुरुजी के लिए एक चबूतरा बना था। यही श्रीगुरुदेव चाणक्य की पाठशाला थी। इस पाठशाला में महात्मा चाणक्य संस्कृत और व्याकरण नहीं पढ़ाते थे। उनका कहना था—यह सब कुछ पढ़ना है तो किसी और पाठशाला में जाओ। वह पढ़ाते थे आचार और व्यवहार की नीति। अर्थशास्त्र और राज्य-शास्त्र। इसीलिए जब पाठशाला शुरू होती तो विद्यार्थियों के अतिरिक्त

कितने ही क्षत्रिय युवक वहां जाकर खड़े हो जाते और चाणक्य के मुंह से नीति का उपदेश सुनते जो और किसी भी जगह मिल न सकता था। आज भी कुछ लोग खड़े थे। उन्हीं में एक तेजस्वी युवक घोड़े की लगाम को हाथ में पकड़े एकटक से खाली चबूतरे की ओर देख रहा था। देखते-देखते जैसे वह थक गया। अपने ही पास बैठे एक विद्यार्थी से उसने पूछा—"आप के गुरुदेव क्या नहीं आयेंगे ?"

विद्यार्थी ने सिर उठाकर उस युवक की ओर देखा और हँसकर कहा—"धन्य हो बाबा ! न मैं तुम को जानता हूं और न तुम मुझको। गुरुजी का कहना है—अनजाने आदमी के साथ बात न करनी चाहिए। पहले जानो बाद में बोलो। अच्छा मैं हूं जीवसिद्धि—तुम्हारा नाम क्या है ?"

घोड़े के पास खड़े उस युवक ने कहा—"मेरा नाम चन्द्रगुप्त है। तक्षशिला में रहता हूं। एक दिन इधर आया तो गुरुदेव चाणक्य की प्रशंसा सुनी। सोचा चलकर देख आऊं। लेकिन मालूम होता है कि आज वह नहीं आयेंगे।"

जीवसिद्धि ने अपने पोपले मुंह को और भी फुलाकर कहा—"तुम गुप्त चन्द्र हो या प्रकट चन्द्र, यह मैं नहीं जानता—लेकिन अचल नाम का चांद तुम्हारे माथे के आकाश में अभी तक नहीं उगा। गुरुदेव नहीं आयेंगे तो यह सब लोग यहाँ बैठे किस लिए हैं ?" और उसने अपने पास ही बैठे एक और विद्यार्थी को पुकार कर कहा—"क्योंजी पालक ! गुरुदेव क्या आज नहीं आयेंगे। तुम्हारा ज्योतिष क्या कहता है ?"

ज्योतिषी पालक ने मन-ही-मन कुछ हिसाब करके कहा—"गुरुदेव घर से चल पड़े हैं—पहाड़ से नीचे उतर रहे हैं—शीघ्र ही यहां पहुँचेंगे। लेकिन बहुत देर यहां बैठ नहीं सकेंगे, ज्योतिष से यही मालूम होता है !"

चाणक्य कुछ सोचते हुए बोले—"जिसका कुछ भी नहीं रहा उसी के साथ जाकर तुम क्या लोगे ? यह नहीं जानता। लेकिन जो चलना चाहता है उसे मैं रोकूंगा नहीं, आओ, विष्णुगुप्त की चिता को अकेले में जलने दो...आओ...!"

और वह तीनों पहाड़ के नीचे उतरने लगे !

: ३ :

उन दिनों उत्तरी भारत कितनी ही छोटी-छोटी रियासतों और प्रजातन्त्र राज्यों में बँटा हुआ था। कुल्लू, कांगड़ा और उसके साथी इलाकों में चित्रवर्मा राज्य करते थे। वहां से लेकर सतलुज और व्यास के किनारे तक मलयदेश में महाराज सिंहगढ़ का सिक्का चलता था। व्यास और जेहलम के बीच महाराज पुरु अपनी राजसत्ता जमाये बैठे थे। जेहलम से लेकर तक्षशिला तक आम्भी की तूती बोलती थी। हरिपुर, मानसहरा, बालाकोट और इससे ऊपर कोहिस्तान, अफगानिस्तान, खैबर और ताशकन्द के इलाकों में महाराज पर्वतक राज करते थे। काश्मीर में पुष्पसेन थे। स्यालकोट में शालिवाहन। सिंधु देश में सिंधुसेन और इसके अतिरिक्त कितने ही छोटे-छोटे प्रजा-तन्त्र राज्य थे।

ऊपर की घटना महाराज पर्वतक के राज्य में हुई। रात भर महात्मा चाणक्य और उनके दोनों शिष्य जीवसिद्धि और पालक पहाड़ों में मारे-मारे फिरते रहे। माया का या उसके उड़ाने वालों का कहीं कोई पता नहीं लगा। निराश और हताश होकर तीनों पहाड़ से नीचे उतरने लगे। आकाश साफ था। धूप प्रतिक्षण तेज हो रही थी। चाणक्य अब तक क्रोध की मूर्त्ति बने आगे-आगे चल रहे थे। पीछे-पीछे डरे, सहमे और थके हुए जीवसिद्ध और पालक !

जीवसिद्धि ने धीमे से कहा—"पालक ! गुरुदेव तो शायद

पागल हो गए हैं। रात भर चलते रहे। सुबह से चल रहे हैं और अब दोपहर होने को आई—एक क्षण के लिए भी उन्होंने रुकने का नाम नहीं लिया। तुम्हारा ज्योतिष अब क्या कहता है?"

पालक ने गम्भीरता के साथ कहा—"मेरा ज्योतिष तो अब थक गया और फिर उसे धूप भी लग रही है, प्यास भी! लेकिन वह सामने देखो एक दीवार!"

जीवसिद्धि ने भी देखकर कहा—"हां! वह तो महाराज पर्वतक के उद्यान की दीवार है। महाराज कभी इस ओर आते हैं तो इसी उद्यान में ठहरते हैं। गुरुदेव भी थोड़ी देर यहां ठहर जायं तो......!"

पालक ने अंगुलियों पर हिसाब करते हुए कहा—"गुरुदेव इसी उद्यान में ठहरेंगे, ज्योतिष यही कहता है।"

लेकिन उद्यान की दीवार आ गई। द्वार भी आगया और चाणक्य नहीं ठहरे। जीवसिद्धि ने व्यंग्य से हाथ जोड़कर और माथा झुकाकर कहा—"पालक बाबा! धन्य तुम्हारा ज्योतिष—आग लगे इसको।"

पालक ने फिर हिसाब करके कहा—"लेकिन ज्योतिष कहता है कि वह ठहरेंगे!"

जीवसिद्धि ने उसका कान पकड़ कर कहा—"चुप ज्योतिष के बच्चे! जल्दी से चल, नहीं तो गुरुदेव आगे निकल जायंगे!"

लेकिन इसी समय गुरुदेव अचानक खड़े हो गए। उद्यान के भीतरसे किसीके गाने की आवाज आ रही थी। उसीको सुनकर एक बार ध्यान से उन्होंने सुना। कुछ समझ नहीं आया। तब उद्यान की ऊंची दीवार के पास खड़े होकर बोले—"पालक! जीवसिद्धि! इस उद्यान में जाकर देखो तो कौन

और जैसे ही वह वृक्ष की ओट से चन्द्रगुप्त के सामने आये वैसे ही जीवसिद्धि ने कहा—"और कोई नहीं, मैं हूँ जीवसिद्धि !"

छाया कांपते हुए पालक को देखकर हँसी से दोहरी होने लगी। चन्द्रगुप्त ने भी हँसते हुए तलवार से हाथ हटा कर कहा—"जीवसिद्धि, ओह, महात्मा चाणक्य के शिष्य, लेकिन तुम यहां कैसे टपक पड़े।"

जीवसिद्धि ने अपने पोपले मुंह को फुलाकर कहा—सरकार की प्रेमलीला देखने। लेकिन डरने की कोई बात नहीं। महाराज पर्वतक से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। हम तो उनका राज्य छोड़ कर चले जा रहे हैं। जिस राज्य में ब्राह्मण की अबोध बेटी को भी डाकू उठा कर ले जांय वहां रहना ठीक नहीं है।"

छाया और चन्द्रगुप्त दोनों ने एक साथ हैरान होकर पूछा—"ब्राह्मण की बेटी !"

जीवसिद्धि ने कहा—"हां, गुरुदेव चाणक्य की बेटी माया। कल उसे कोई उनकी कुटिया से उठाकर ले गया। रात भर हम उसे खोजते रहे। अब निराश होकर इस राज्य को छोड़ रहे हैं। क्रोध की मूर्ति बने गुरुदेव चाणक्य बाहर खड़े हैं।"

चन्द्रगुप्त ने घबरा कर कहा—"कौन गुरुदेव !......छाया ! तुम जाओ—मेरे गुरुदेव कष्ट में हैं। मैं फिर मिलूंगा।"

छाया ने कहा—"आपके गुरुदेव ?"

चन्द्रगुप्त बोले—"हां, कल उनकी एक ही बात मेरे हृदय में तीर की तरह चुभ गई। तभी मैंने सोचा—मेरे गुरुदेव यही हैं—मैं फिर मिलूंगा। तब तक भूलना मत !"

छाया बोली—"भूल सकूंगी कैसे चांद ! तुम तो मेरे हृदय रक्त के कण-कण में हो। तुम न भूल जाना !"

चन्द्रगुप्त ने उसके दोनों हाथ पकड़ कर उन्हें सहलाते हुए कहा, "भूलूंगा नहीं छाया, भूलूंगा नहीं। जल्दी ही वापस आऊँगा।"

छाया की आँखों में आँसू आगए। चन्द्रगुप्त उसे छोड़ कर तालाब से नीचे उतरे। एक वृक्ष के साथ उनका घोड़ा बंधा था, उसे खोल कर और हाथ से छाया को प्यार भरा नमस्कार करते हुए उन्होंने जीवसिद्धि से कहा—"चलो !"

छाया ने अपना हाथ हिला कर उनके नमस्कार का उत्तर दिया। चन्द्रगुप्त उसे देखते हुए उद्यान से बाहर आ गए। उद्यान की दीवार के पास एक शिला पर बैठे चाणक्य को देखते ही वह घोड़ा छोड़ कर उनके पाँव में जा गिरे। पाँव पर अपने सिर को रखे-ही-रखे बोले—"गुरुदेव ! आप मुझे नहीं जानते लेकिन मेरे हृदय में आपके लिए असीम श्रद्धा है। मैं मगध देश का चन्द्रगुप्त हूँ।"

चाणक्य ने उसे उठाकर सूक्ष्म-सी दृष्टि से उसकी ओर देखा और फिर कहा—"जीवसिद्धि ! मैंने पूछा था उद्यान के भीतर कौन गा रहा है—मैंने समझा शायद तुमने छाया को देखा हो। अच्छा परे हट जाओ बालक ! तुम भी परे बैठो। अभी हम आगे चलेंगे।"

और जब वह दोनों परे हट कर बैठ गए तो चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"चन्द्रगुप्त ! तुमने मुझे गुरु कहा—लेकिन अपना पूरा पता नहीं दिया। ऐसा करना ठीक नहीं है। मैं जानता हूँ तुम मगध के राजकुमार हो। महाराज नन्द के सबसे बड़े बेटे मौर्य चन्द्रगुप्त—तुम्हारे पिता तुम्हें मार डालना चाहते हैं। तुम्हारे भाई भी तुम्हारे खून के प्यासे हैं। इसीलिए तुम मगध से दूर पर्वतक के इस राज्य में मारे-मारे फिर रहे हो।"

चन्द्रगुप्त ने हैरान होकर कहा—"गुरुदेव !"

चाणक्य गम्भीरता से बोले—"हैरान होने की आवश्यकता नहीं—चाणक्य एक साधारण ब्राह्मण है अवश्य लेकिन अपने देश की हर बात को वह जानता है। उद्यान के भीतर शायद महाराज पर्वतक की कन्या छाया थी।"

चन्द्रगुप्त श्रद्धा से बोले—"हां, महाराज—लेकिन मैं पूछने आया था कि आपके इस कष्ट में यदि मैं कोई सहायता कर सकूं !"

चाणक्य आकाश की ओर देखते हुए बोले—"सहायता—सहायता से कुछ नहीं होगा चन्द्रगुप्त—मेरी छोटी-सी बेटी; पता नहीं वह कहाँ है ? लेकिन जो अब तक नहीं मिली वह अब मिलेगी भी नहीं। मेरा हृदय, मेरा शरीर, मेरा मस्तिष्क, मेरी आत्मा सब-के-सब क्रोध से जलकर राख हुए जा रहे हैं। लेकिन क्रोध किस पर करूं ? किसे जलाकर भस्म कर दूं। रात से मैं सोच रहा हूँ। इस देश की अवस्था ही बिगड़ गई है। राजा लोग छोटी-छोटी रियासतें बनाकर ऐश और आराम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ब्राह्मण का मान नहीं रहा। उस के शाप का भय नहीं रहा। डाकू—डाकू जाग उठे हैं हर ओर। हज़ारों मील दूर से आकर सिकन्दर भी आज यह हौसला करता है कि भारत को लूट कर ले जाय। यहाँ के लोगों से धर्म, धन और स्वतन्त्रता छीन ले। पोरस पर हमला हुआ तो पर्वतक हाथ-पर-हाथ धरे बैठा रहा। पुरु पर आक्रमण हुआ तो आम्भी ने सिकन्दर का साथ दिया। लूट मची हुई है हर ओर ! इस लूट में एक ब्राह्मण की बेटी भी डाकुओं के लालच का शिकार बन गई - इसमें डाकुओं का कसूर है। कसूर है इस असंगठित राज्य प्रणाली का। इन राजाओं का। देश में फैली हुई अव्यवस्था का। इसी को दूर करना होगा—इसी को जला

कर राख बना देना होगा। जैसे जंगल की आग सब कुछ भस्म कर देती है।"

चन्द्रगुप्त ने उस भीषण क्रोधमूर्त्ति को देखा। उन हाथों को जो किसी का गला दबा देने के लिए काँप रहे थे। उन आँखों को जिन से क्रोध की चिनगारियाँ निकल रही थीं। उस सिर को जो एक शत्री की तरह आकाश का सीना फाड़ देने को उद्यत हो रहा था।

लेकिन चन्द्रगुप्त डरे नहीं। चिल्लाकर बोले—"जय गुरुदेव !"

चाणक्य ने उनकी ओर देखा और फिर कुछ शान्त होकर बोले—"चन्द्रगुप्त ! तुम नौजवान हो। तुम्हारे हृदय में देश के लिए प्यार है। तुम्हारी आँखों में प्रतिभा है, बोलो मेरा साथ दोगे ?"

चन्द्रगुप्त ने उनके पाँवों को छूकर कहा—"आज से तब तक—जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं।"

चाणक्य ने पूछा—"मेरी आज्ञा में चलोगे ?"

चन्द्रगुप्त ने फिर उनके चरण छूकर कहा—"गुरुदेव की हर आज्ञा मेरे लिए ईश्वर की आज्ञा होगी।"

चाणक्य बोले—"तो सब से पहले यूनानी सेना की इस बढ़ती हुई आंधी को रोकना होगा। तुम आज ही जाओ, जाकर सिकन्दर की सेना में भरती हो जाओ। कहना कि तुम मगध के महाराज नन्द से बदला लेने के लिए यूनानी सेना में भरती हुए हो। सिकन्दर की सहायता लेकर मगध पर हमला करना चाहते हो।"

चन्द्रगुप्त बोले—"ऐसा ही होगा गुरुदेव ! लेकिन सिकन्दर महाराज पुरु पर हमला करने के लिए आगे बढ़ रहा है। मैं क्या हिन्दुस्तानी होकर एक हिन्दुस्तानी राजा के विरुद्ध लड़ूँगा ?"

चाणक्य ने कहा—"पुरु जीत नहीं सकता । सिकन्दर की सेना अधिक है । उसकी विजय होगी । तुम केवल दर्शक बने रहो । यूनानी सेना की सारी युद्ध-विद्या सीखो, उनके भेद मालूम करो और जब कभी समय मिले तो यूनानी सैनिकों को उनके घर की याद दिलाते रहो । मैं मालव देश में तुम्हें मिलूंगा, तब तक भगवान् तुम्हारी रक्षा करें ।"

चन्द्रगुप्त सिर झुकाकर बोले—"जो आज्ञा गुरुदेव !"

चाणक्य ने फिर कहा—"और सुनो, पर्वतक की बेटी छाया तुम्हें प्रेम करती है ?"

चन्द्रगुप्त ने लज्जा से सिर झुका लिया ।

चाणक्य बोले—"इस प्रेम को बनाये रहो, लेकिन इस में खो न जाओ ।" और तब वह पुकार कर बोले—"जीवसिद्धि ! पालक ! आओ हम आगे चलेंगे ।"

× × ×

रावी के पूर्वी तट पर जहां आज लाहौर है । उस समय लवपुर नाम का एक छोटा-सा नगर बसा था । इसी नगर के पास यूनानी सेना पड़ाव डाले आगे बढ़ने की प्रतीक्षा कर रही थी । रावी और व्यास के बीच बसे हुए मालव देश में उन दिनों कोई राजा राज्य नहीं करता था । मालवी लोग स्वयं ही एक प्रजातन्त्र बना कर अपना प्रबन्ध करते थे । इन लोगों ने चनाब से लेकर रावी तक हर कदम पर सिकन्दर की सेनाओं का मुकाबला किया । हर कदम पर मालवी लोगों की छोटी-छोटी टुकड़ियां यूनानी सेना पर टूट पड़तीं और भारी नुकसान पहुँचाकर स्वयं या तो नष्ट हो जातीं या भाग जातीं । यूनानी सेना फिर आगे बढ़ती और फिर कोई और मालवी दल आकर उस पर आक्रमण कर देता । सिकन्दर ने हैरान होकर अपने सेनापति सेल्युकस से कहा—"क्या हम सारी उम्र इस मालव

देश में ही फँसे रहेंगे। क्या इन उद्धत मालवियों को सीधा करने का कोई तरीका नहीं है ?"

सैल्युकस ने यूनानी ढङ्ग से सलाम करके और सिर झुका-कर कहा—"शहंशाह जिनका कोई राजा नहीं, कोई राजधानी, नहीं, उनसे हम लड़ें तो कैसे लड़ें ?"

सिकन्दर ने चिढ़कर कहा—"अजीब देश है और वाहियात लोग हैं। राजा नहीं, सेना नहीं, राजधानी नहीं फिर भी लड़े जा रहे हैं। पोरस, आम्भी, मेघाश कोई भी नहीं बता सकता कि इन लोगों को कैसे सीधा किया जाय ! अच्छा मगध के उस राजकुमार को बुलाओ तो, क्या नाम है उसका ?"

सैल्युकस ने सिर झुका कर कहा—"चन्द्रगुप्त—लेकिन वह छोकरा क्या करेगा ?"

सिकन्दर ने कहा—"यह मैं नहीं जानता, लेकिन उसकी आँखों में समझ है, उसके दिल में हौसला है। शायद वह कोई तरीका बता सके। उसे तलाश करके मेरे पास भेज दो।"

सैल्युकस—"अभी लीजिए शहंशाह" कह कर खेमे से बाहर चला गया, और सिपाही से बोला—"हिन्दुस्तानी चन्द्र-गुप्त जहां कहीं भी हो उसे कहो कि शहंशाह उसे याद करते हैं।"

वह सिपाही चन्द्रगुप्त को तलाश करने के लिए आगे बढ़ा।

लेकिन चन्द्रगुप्त इस समय छावनी से दूर रावी के तट पर एक वृक्ष की छाया के नीचे खड़ा पता नहीं क्या सोच रहा था। इसी समय दूर से आते हुए एक आदमी ने पुकार कर कहा—"चन्द्रगुप्त !"

चन्द्रगुप्त ने उस आदमी को ध्यान से देखा और पास जाकर कहा—"जीवसिद्धि, मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।

गुरुदेव सुख से हैं ?"

जीवसिद्धि ने इधर-उधर देखकर कहा—"बिल्कुल सुख से हैं। वह पूछना चाहते हैं कि यूनानी सेना कब तक आगे बढ़ेगी ?"

चन्द्रगुप्त बोले—"दो या तीन दिन में।"

जीवसिद्धि ने कहा—"लेकिन गुरुदेव ऐसा नहीं चाहते। उन्होंने कहा है—चनाब से रावी तक उनके भेजे हुए मालवी वीरों ने यूनानी सेना को काफी नुकसान पहुँचाया है। ख्याल था कि इस नुक़सान को देखकर सिकन्दर रावी से ही वापस लौट जायगा। ऐसा नहीं हुआ। इसलिए रावी से व्यास तक के मालवी वीरों में उत्साह पैदा करने और उन्हें संगठित करने की आवश्यकता है। इसके लिए कम-से-कम पन्द्रह दिन चाहिए। तब शायद सिकंदरको इतना नुकसान पहुँचे कि वह व्यास से आगे न बढ़ सके। गुरुदेव का विश्वास है कि आम्भी और पुरु से निराश होकर सिकंदर आप से मंत्रणा करेगा। उस समय आप उसे कम-से-कम पंद्रह दिन तक यहीं रुके रहने की सलाह दीजिए। तब तक गुरुदेव जगह-जगह घूम कर अपना काम कर लेंगे।"

चंद्रगुप्त ने धीमे से कहा—"गुरुदेव की आज्ञा मेरे सिर माथे पर—लेकिन सिकंदर मुझे सलाह देने के लिए कहेगा—ऐसा तो भास नहीं होता !"

जीवसिद्धि बोला—"गुरुदेव को होता है। उनका कहना है कि अपने नुकसान को देखकर सिकंदर का दुखी और क्षुब्ध होना स्वाभाविक है। इसी क्षोभ की अवस्था में उसने सैल्युकस से मंत्रणा करना छोड़कर पहले पुरु और बाद में आम्भी और मेधाश से मंत्रणा की। उनसे भी निराश होकर वह आपकी ओर देखेगा। आपकी मंत्रणा चाहेगा। तभी आप उसे उल्टी बात समझाइये !"

चंद्रगुप्त बोले—"धन्य है गुरुदेव की प्रतिभा, उनके चरणों में मेरा प्रणाम कहना—और कहना कि सिकंदर पंद्रह दिन तक लवपुर से आगे नहीं बढ़ेगा—लेकिन वह देखो कोई उधर आरहा है।"

जीवसिद्धि ने देख कर कहा—"हां—कोई लड़की है शायद !"

चंद्रगुप्त ने धीरे से कहा—"उसका नाम है हेलेन—सेनापति सैल्युकस की बेटी—अब तुम भागो यहां से—गुरुदेव के चरणों में मेरा प्रणाम कहना नहीं भूलना—नमस्कार !"

जीवसिद्धि जल्दी से परे चला गया। चंद्रगुप्त फिर रावी की लहरों की ओर देखने लगा। जैसे देर से उन्हीं की ओर देख रहे हों, जैसे उन्होंने हेलेन को न देखा हो !"

इसी अवस्था में हेलेन ने पीछे से आकर उनकी आंखों पर दोनों हाथ रख दिये।

चंद्रगुप्त चौंकने का भय दर्शाते हुए बोले—"अरे छोड़ो—कौन है ?"

हेलेन ने अपने हाथ हटा लिये और मुसकराकर कहा—"कहने वाले रोज़ कहते हैं, छोड़ो-छोड़ो-छोड़ो—लेकिन अगर किसी का छोड़ने को जी न चाहे तो—!"

चंद्रगुप्त ने यूनानी ढंग से सलाम करके कहा—"आह आप ! कुमारी हेलेन—सेनापति सैल्युकस के पितृप्रेम का केंद्र—कहिए मैं आपकी क्या सेवा करूं ?"

हेलेन ने उदास-सी होकर कहा—"सेवा-सेवा-सेवा—क्या तुम हिंदुस्तानी पुरुष पत्थर होते हो ! क्या मुझे प्रतिदिन अपने पास आते देख कर भी तुम्हें कोई बात समझ नहीं आती ?"

चंद्रगुप्त ने मुसकराते हुए कहा—"आती है कुमारी जी !

६२३८

एक बात यह समझ में आई कि यूनानी लोग केवल लड़-लड़ कर लूट मार करना ही नहीं जानते प्रेम करके दूसरों का दिल लूटना भी जानते हैं।-लेकिन कहां मैं, कहां आप मैं एक साधारण सैनिक—आप सेनापति सैल्युकस की कन्या!"

हेलेन ने प्यार के साथ कहा—झूठ क्यों बोलते हो चंद्रगुप्त—तुम साधारण सैनिक नहीं हो, तुम हो मगध के राजकुमार। लेकिन तुम अगर राजकुमार न भी होते, साधारण सैनिक ही होते-तो भी क्या हेलेन का प्यार इस बात को देखता। प्यार मान और मर्यादा नहीं जानता, जात देश नहीं जानता। वह जानता है केवल निछावर होना, और असंभव चीज़ के लिए भी तड़पते रहना।"

और अपने-आपको भूल कर, खोयी-सी गाने लगी—

प्रेम कोई रुवकाट नहीं जानता
प्रेम कोई रुकावट नहीं मानता।

वह इस नदी की तरह है जो पता नहीं कब, पता नहीं क्यों—सागर के प्रेम में दीवानी हो उठी है।

चली गिरिशिखर से
तोड़ फोड़ कर चट्टानों की दीवारें
चीर फाड़ कर कोहिस्तानों का सीना
बढ़ी चली इठलाती
झर झर करके झरनों की आंखों से गिरिमाला रोई
चिल्लाए गिरिशिखर
आंधी के संग हू हू करके
फिर भी बढ़ी चली नदी यह
टकराती, चिल्लाती, चट्टानों के संग
गिरती, उठती—पागल सी होकर—

पहुँची मैदानों के अन्दर
घोर निशा में, तीव्र घाम में
बढ़ी चली प्रीतम की ओर
ग्राम की सुन्दर नारी, पहने पांवों में झांझर
आए पानी भरने
युवक कवि ने तट पर बैठे
गाया सूर्यास्त का गान
तो भी रुकी नहीं कहीं पर
गिरी सागर की गोदी में जाकर
लिपटी उसकी लहरों से
नाची गाई— बनगई—बस एक लहर

चंद्रगुप्त धीमे से बोले—"लेकिन अगर तुम्हारे पिता को
[पता] लग गया तो—"

हेलेन ने हंसते हुए कहा—"हम भारतीय नहीं चन्द्रगुप्त ! हम यूनानी हैं। और यूनान में पिता बेटी के प्रेम के रास्ते में खड़े नहीं होते। और अगर वह कभी खड़े भी हों—अगर वह कभी मुझे रोकने की कोशिश करें—तो मैं बच्ची नहीं हूँ—मैं उन्हें छोड़ सकती हूँ—और वह फिर गाने लगी—

"झर झर करके झरनों की आंखों से
गिरिमाला रोई
चिल्लाए गिरिशिखर आंधी के संग हू हू करके
पर बढ़ी चली नदी यह !"

इसी समय किसी ने पुकार कर कहा—"चंद्रगुप्त !"

चंद्रगुप्त ने घूम कर देखा—एक यूनानी सिपाही खड़ा है—पूछा—"आपने मुझे बुलाया ?"

सिपाही ने कहा—शहंशाह आपको याद कर रहे हैं—इसी वक्त—अपने खेमे में ! जल्दी पहुँचना चाहिए—आप को

नदी तालाब के किनारे एक और गांव में—पीपल के एक वृक्ष के नीचे खड़े चाणक्य उपदेश दे रहे थे सामने मालवी वीर मालवाएं [illegible]—वीर और न जाने कितने खड़े थे। चाणक्य ने कहा "यह युद्ध नहीं है। यज्ञ है। जीने की आशा छोड़ कर जीने की आशा छोड़ कर इन्हें यज्ञ में आहुति देनी पड़ेगी। देश की देवि बलिदान मांगती है। मां आज रक्तपिपासिनी हो रही है। कौन देगा उसे रक्त। कौन देगा अपना रक्त !"

सामने खड़े वीरों ने म्यानों से तलवारें निकाल कर—उन्हें हवा में हिलाते हुए चिल्ला कर कहा—'हर हर महादेव !"

× × ×

एक और गांव में—नदी के किनारे चाणक्य खड़े थे—सामने मालवी वीरों का एक और दल हाथों में शंख और तुरहियां लिये—कमर से तलवारें लटकाये। चाणक्य कह रहे थे—"जीवन और मौत दोनों खेल हैं। जीवन के बाद मौत है। मौत के बाद जीवन। आज तक कोई हमेशा नहीं जिया। आज तक कोई सदा के लिए नहीं मरा। तब जीवन से मोह क्यों? मौत से भय क्यों? कर्त्तव्य ही हमारा साथी है। कर्त्तव्य को ही हम पूरा करेंगे।"

सामने खड़े वीरों ने पूरे जोर से शंख और तुरहियां बजायीं। उनकी ध्वनि से जैसे आकाश फट पड़ा।

× × ×

एक और गांव—भगवान् शिवकी एक बड़ी मूर्त्ति के पास महात्मा चाणक्य खड़े थे। सामने अपने अपने घोड़ों को पकड़े—कितने ही मालवी वीर। चाणक्य कह रहे थे—"अब खड़े रहने का समय तो नहीं है। आगे बढ़ने का वक्त

आगया है। आगे बढ़ने का और मौत से जूझ पड़ने का वक्त आगया है। अपने देश पर हमला करने वाले शत्रु का विनष्ट कर देना ही हमारा कर्त्तव्य है। छिप कर या छिपा कर, धोके से या छल से, कपट से या पाखण्ड से, झूठ से या चोरी से—किसी भी तरीके से शत्रु को नष्ट कर देना ही हमारा काम है। पापी का मुकाबला करने के लिये पाप से काम लेना पाप नहीं है। आगे बढ़ो। देशकी आत्मा तुम्हें आशीर्वाद देने के लिए बेताब हो उठी है।"

घोड़ोंके पास खड़े मालवी वीर—उचक कर घोड़ों पर चढ़े। म्यानों से तलवारें निकाल कर उन्हें हवा में हिलाते हुए चिल्ला कर वह बोले—"हर हर महादेव ! हर हर शंकर !" और घोड़ों को एड़ी लगा कर आगे बढ़ गए।

× × ×

तब एक और गांव में—सायंकाल का वक्त था। दूर परे सूर्य्य अस्त हो रहा था। गांव कीस्त्रियां और बच्चे एक ओर खड़े थे दूसरी ओर युवक और प्रौढ़ मालवी वीर। चाणक्य एक घोड़े पर बैठे कह रहे थे—"ब्राह्मण का अब वह मान नहीं रहा। उसकी मर्यादा नहीं रही। पहले वह आज्ञा देता था। आज मैं ब्राह्मण होकर तुम से भीख मांगता हूं।"

और उन्होंने अपनी झोली फैला दी।

कहा—"मैं भीख मांगता हूं इन देवियों के लिए और इन बच्चों के लिए। क्या हम अपनी जान का लोभ करके इनके भविष्य को नष्ट कर देंगे ? क्या हम बर्दाश्त करेंगे कि यूनानी सैनिक इन देवियों को दासियां बना कर अपने साथ ले जायं—और इन बच्चों को सदा के लिए गुलाम बना दें ? क्या हम बर्दाश्त करेंगे कि यह पवित्र भारत भूमि आततायी के पांव के नीचे रौंदी जाएं ? मैं पूछता हूँ। मुझे जवाब दो। ब्राह्मण

भीख मिलेगी ? क्या इस गांव के युवक देश की रक्षा के लिए अपना बलिदान देंगे ?"

एक प्रौढ़ मालवी ने आगे बढ़कर कहा—"ब्राह्मण का आदेश व्यर्थ नहीं जायगा बहनो ! आगे बढ़ो—तिलक लगाओ। हमारी तलवारें देश की रक्षा के लिए बेताब हो उठी हैं।"

कितनी ही नौजवान लड़कियों ने आगे बढ़कर चाणक्य के घोड़े के पावों की धूल ले ली। उसे माथे पर लगा लिया। साथ ही मालवी वीरों ने म्यानों से तलवारें निकाल कर उन्हें खन-खनाते हुए कहा—"हर हर महादेव !"

× × ×

और तब एक और गांव में। रात का वक्त था। एक झोंपड़ी के अंदर छोटा-सा दीपक जलाकर ज़मीन पर आसन बिछाए महात्मा चाणक्य बैठे थे। सामने हाथ जोड़े खड़े थे पालक आर जीवसिद्धि ! महात्मा बोले—"पालक ! म आज के समाचार सुनना चाहता हूँ। कहां पर क्या क्या हुआ ?"

पालक ने सिर झुका कर कहा—"गुरुदेव ! यूनानी सेना मालवी वीरों के हमलों से बौखला उठी है। आज रात जो हमले हुए, उनमें कितने ही यूनानी मारे गए। दिन के वक्त ढूंढ़ने से भी उन्हें कोई सशस्त्र मालवी नहीं मिलता। लेकिन रात के समय उनके झुण्ड के झुण्ड यूनानियों की नींद हराम कर देते हैं। इसके साथ ही एक और बात भी हुई है, जिससे यूनानी सैनिकों का दिल बैठा जा रहा है ?"

चाणक्य ने चौंककर पूछा—"और बात ? और बात क्या ?"

पालक ने कहा—"सेनापति सैल्युकस की बेटी हेलेन की प्रेम कहानी सारी यूनानी सेना में मशहूर हो रही है। इस प्रेम कहानी को सुन-सुन कर यूनानी सैनिकों के दिलों में अपने घरों

की याद जाग उठी है।"

चाणक्य बोले—"अच्छा, यह चन्द्रगुप्त से हेलेन का प्रेम—मैंने इसीलिये इसे रोकने का यत्न नहीं किया।—अच्छा—तुम जाओ—जीवसिद्धि ! यहां बैठो—कुछ संदेश ले जाओ !"

पालक के बाहर चले जाने पर जीवसिद्धि महात्मा चाणक्य के पास बैठ गया।

चाणक्य बोले—"जीवसिद्धि ! अब तक सब कुछ ठीक ही रहा है। मेरा विश्वास है सिकंदर अब व्यास से आगे नहीं बढ़ेगा। चन्द्रगुप्त का काम पूरा हुआ। उसे जाकर कहो कि बिना किसी को कुछ बताये यूनानी सेना को छोड़ कर चला आये। उसकी मंत्रणा ने और प्रेम ने यूनानी सेना को जो नुकसान पहुँचाया है, उसके बाद उसका सिकंदर के निकट रहना ठीक नहीं है !"

जीवसिद्धि ने हाथ जोड़ कर कहा—ऐसा ही होगा गुरुदेव ! मैं अभी जाता हूं !"

और वह उठकर खड़ा हो गया।

चाणक्य बोले—"लेकिन सुनो—उसे कहना—आती बार हेलेन से मिल कर आना न भूले। यह प्रेम आगे चल कर शायद कभी काम आये !"

जीवसिद्धि ने सिर झुका कर कहा—"यह भी कहूँगा गुरुदेव !"

चाणक्य बोले—"तो अब तुम जाओ—मैं कुछ और सोचना चाहता हूँ !"

जीवसिद्धि उन्हें प्रणाम करके बाहर आ गया। चाणक्य किसी गहरी सोच में डूब गए !

: ५ :

फिर पर्वतक के राज में। हरीपुर की पहाड़ियों में बना वही—

उद्यान। उद्यान के बीच संगमर्मर का तालाब और तालाब के किनारे बैठी हुई छाया। पानी से खेलती हुई—हाथों से छींटे उड़ाती हुई—उदास मन से वह गा रही थी—

"दिन घोर काली रात सा लगता है
और रात भयानक श्मशान जैसी
उनके बिना संसार जैसे सूना हो गया है
लोग हँसते हैं और गाते हैं
मैं केवल देखती हूँ और रोती हूँ
मेरे चारों ओर का अंधकार क्या कभी दूर नहीं होगा!
मेरे चांद क्या तुम कभी बादलों से बाहर नहीं आओगे?
घने काले बादलों के पीछे से होकर बाहर आओ—
आकर कहो—मैं हूँ चांद—
भटक रहा था तुम्हारे ही लिए
बादल की अंधेरी गुहाओं में—!"

इसी समय उसके पीछे से आवाज़ आई—एक वृक्ष के पीछे आकर कोई अभी खड़ा हुआ था। अपने घोड़े को वृक्ष के साथ बांधते हुए उसने गाया—

"मैं हूँ चांद, चकोर के प्रेम में पागल
मैं भटक रहा था घोर घने अंधेरे के अंदर
सुनता गीत चकोरी के—पागल करते थे जो—
लगाते थे आग—बादल के पानी के अंदर!"

छाया ने जल्दी से घूम कर देखा। देखा—और विह्वल हो कर कहा—"आप!—कब?"

आने वाले ने कहा—"अभी तो—जहां छाया, वहां चन्द्रगुप्त!"

छाया ने उठते हुए कहा—"यह झूठ बोलना कहाँ से सीख लिया। इतने महीनों से एकबार भी तो दर्शन नहीं दिया और

कहते हैं—जहां—छाया—वहां...!"

चन्द्रगुप्त ने उसके पास आकर, उसके कंधों को पीछे से पकड़ कर कहा—"बस नाराज हो गईं ना—मैं किसी आमोद-प्रमोद में तो नहीं फंसा था। फर रहा या फाम—सिकंदर की जो आंधी भारत के सीने पर आगे बढ़ रही थी, गुरुदेव चाणक्य उसे रोकने में सफल हो गए हैं।"

छाया ने आश्चर्य के साथ उनके सामने मुंह करके कहा—"गुरुदेव चाणक्य!—लेकिन यहाँ तो सभी लोग यही कहते हैं कि आपकी कूटनीति ने ही सिकंदर का सर्वनाश किया। वह व्यास से आगे नहीं बढ़ सका। वापस लौट गया!"

चन्द्रगुप्त हँसकर बोले—"खूब! यह बिना कमाया यश क्या मुझे मिल रहा है? लेकिन कहने वाले असलियत को नहीं जानते छाया! मैं तो केवल एक शस्त्र हूँ—चलाने वाले हैं गुरुदेव!"

छाया बोली—"लेकिन पिताजी कहते हैं कि सिकंदर की सहायता से मगध का राज वापस लेने में आपको जो सुविधा हो सकती थी—वह अब नहीं रही!"

चन्द्रगुप्त कुछ सोचते हुए बोले—"हां नहीं रही—लेकिन विदेशियों को अपने देश का मालिक बनाकर मैं कोई राज नहीं लेना चाहता। इस से तो अच्छा है कि मैं विदेशियों से अपने देश को बचाता बचाता मर जाऊं!"

छाया ने जल्दी से उनके मुँह पर हाथ रख कर लम्बी सांस लेकर कहा—"भगवान् रक्षा करें—यह क्या कह दिया! तुम जानते भी नहीं कि किस के साथ बात कर रहे हो। सुनने वाले का कोई ख्याल नहीं किया!"

चन्द्रगुप्त हँसकर बोले—"पगली! मैं मरा थोड़े ही हूँ अभी तो बहुत कुछ करना है। सिकंदर चला गया।

यूनानियों का राज अभी तक उत्तरी भारत के सीने पर मूंग दल रहा है। आम्भी, पुरु और स्वयं तुम्हारे पिता—महाराज पर्वतक अभी तक यूनानियों की सत्ता को माने हुए हैं। सिकंदर का वह सेनानी फ़ीलीपोस जेहलम के किनारे बैठा-बैठा अभी तक सिकंदर के नाम पर राज कर रहा है। देश के माथे पर गुलामी की जो तलवार झूल रही थी वह थोड़ी शिथिल हुई है जरूर—पूर्णतया दूर नहीं हुई !"

छाया ने कहा—"हमारा देश और उसका स्वातंत्र्य जुग-जुग जिये—लेकिन यह फ़ीलीपोस कौन है ?"

चन्द्रगुप्त बोले—"सिकंदर का एक सेनानी—जिसे यूनानी शहंशाह जीते हुए इलाकों को गुलाम बनाये रखने के लिए छोड़ गया है।"

छाया ने हंसकर कहा—"फ़ीलीपोस–इन यूनानियों के नाम कैसे विचित्र होते हैं ! लेकिन देखो चांद महाराज ! देश और धर्म की यह बात मैं नहीं जानती। मैं तो केवल एक धर्म जानती हूँ और वह प्यार का धर्म है। राजनीति और कूटनीति से मुझे कोई वास्ता नहीं। मेरे लिए विश्वभर का राज तुम्हारी मुसकान में है—तुम्हारे दर्शन में—और उन आंखों में, जिन्हें देखने के लिए मेरी आंखें थक गई हैं ! अब वचन दो, जहां जाओगे—मुझे साथ ले जाओगे ?"

चन्द्रगुप्त कुछ सोचते हुए बोले—"ले जाऊंगा अवश्य—लेकिन अभी नहीं। अभी तो गुरुदेव चाणक्य ने मुझे सिर्फ इतनी आज्ञा दी है कि तुम्हें मिल आऊं !"

छाया ने दांत पीस कर कहा—"चाणक्य—चाणक्य—मैं उसका नाम सुनना नहीं चाहती—अगर कभी वह मेरे सामने आजाये तो........!"

चन्द्रगुप्त ने जल्दी से उसके मुंह पर हाथ रख कर कहा—

"छी ! छी ! ऐसी बात नहीं कहते। वह भारत के रक्षक हैं। ब्राह्मण हैं-मेरे गुरुदेव ! इस सारे देश में पर्यटन करके मैंने एक उन्हीं को पाया है जिनका मस्तिष्क दूर तक सोचता है, जिनकी आंखें दूर तक देखती हैं, जिनकी प्रतिभा और देशभक्ति के सामने वृहस्पति की प्रतिभा भी फीकी मालूम होती है। जिनका अपना कोई स्वार्थ नहीं। कभी इन्हें देखोगी-तो श्रद्धा के साथ उनके चरणों में शीश झुका दोगी !"

: ६ :

इसी समय यहां से दूर—जेहलम नदी के तट पर, जंगल में बने हुए शिवमंदिर के साथ वाले कमरे में जीवसिद्ध ने हाथ जोड़ और माथा नवां कर कहा—"गुरुदेव के चरणों में प्रणाम !"

सामने बैठे महात्मा चाणक्य ने आंख उठा कर देखा और धीमे से कहा—"भगवान् भला करें। तुम पुरु की राजधानी से हो आये ?"

जीवसिद्धि ने कहा—"हाँ गुरुदेव ! पुरु पूरे धर्म के साथ और सच्चाई के साथ यूनानियों का साथ दे रहे हैं। फीलीपोस पुरु के सैनिकों को यूनानी ढंग की अस्त्रशिक्षा दे रहा है। आम्भी, पौरवदेश, काश्मीर और मालव के लोगों को तरह-तरह के लालच देकर सेना में शामिल किया जा रहा है !"

चाणक्य कुछ सोचते हुए बोले—"समझा, जो काम सिकंदर नहीं कर सका —उसे फीलीपोस स्वयं भारतीय सैनिकों को लेकर करना चाहता है। अच्छा, पालक को भेज दो—मेरे पास और उस मालवी वीर प्रसेनजित को भी ! पालक से बात कर लूं तो प्रसेनजित को बुला लाना। चन्द्रगुप्त का कोई समाचार मिला ?"

जीवसिद्धि ने कहा—"इस के सिवाय तो और कुछ नहीं कि जगह-जगह आज उनके नाम की पूजा हो रही है।

खोजते फिरते हैं, दण्ड देने के लिए और भारतीय छिप-छिप कर श्रद्धा से उनका नाम लेते हैं। उन्हें अपना रक्षक और नेता मानते हैं! यदि आपने मना न कर दिया होता तो मैं लोगों को बताता कि यह उनका भ्रम है। उनके असली रक्षक गुरुदेव........!"

चाणक्य जल्दी से बोले—"ठहरो-जो कुछ हुआ, मेरी इच्छा और मेरे आदेश से हुआ। देश को आज एक क्षत्रिय नेता की आवश्यकता है। इसलिए मैंने प्रसेनजित को कह कर यह प्रचार कराया कि जो कुछ किया चन्द्रगुप्त ने ही किया। कभी भूल कर भी इस बात का विरोध न करना। देश को आज चन्द्रगुप्त की ज़रूरत है। उसका यश बढ़ना चाहिए। लोगों में उसके लिए उत्सुकता बढ़नी चाहिए! जब कभी किसी से बात करने का मौका मिले तब तुम भी ऐसी ही बात कहना—अब जाओ, पालक को भेजो—!"

जीवसिद्धि ने सिर झुका कर कहा—"जो गुरुदेव की आज्ञा!"

और उसने बाहर जाकर मंदिर में पुजारी बन कर बैठे जाप करते हुए पालक को कहा—"ज्योतिषी महाराज! गुरुदेव—!"

पालक ने जल्दी से उठ कर कहा—"उनकी जय हो—आखिर उन्हें मेरी याद तो आई—मैं तो समझा था वह मुझे भूल गए!"

और मंदिर से बाहर आकर वह जल्दी से महात्मा चाणक्य के पास गया। द्वार पर खड़े ही खड़े उसने झुक कर प्रणाम किया—

चाणक्य हंस कर बोले—"आओ ज्योतिषी! तुम शायद नाराज हो रहे हो कि हमने कई दिनों से तुम्हें कोई काम नहीं

दिया। तुम्हारा ज्योतिष क्या कहता है ?"

पालक ने फिर एक बार नमस्कार करके कहा—"गुरुदेव के सामने मेरा ज्योतिष नहीं चलता—!"

चाणक्य हँसे। बोले—"पालक! तुम पुरानी भाषा जानते हो—फ़ीलीपोस को भी कभी देखा है ?"

पालक ने कहा—"हाँ, महाराज! एक बार जब सिकन्दर के चले जाने के बाद उसने दरबार किया था। आप की आज्ञा से ही मैं उस दरबार में गया था।"

चाणक्य ने कहा—"दरबार में उसके पास कौन बैठा था ?"

पालक ने कहा -"महाराज पुरु, महाराज आम्भी, महाराज........"

चाणक्य बोले—"अरे ठहरो—फ़ीलीपोस के बाईं ओर कौन था ?"

पालक बोला "ओह—बाईं ओर—वह तो यूडेमियस था। फ़ीलीपोस का सेनापति।"

चाणक्य ने कहा—"हाँ, वही—यूडेमियस—तुम जैन भिक्षु बन कर उसके पास जाओ। अपने ज्योतिष का चमत्कार दिखा कर, भारत के आर्यों की निन्दा करके और यूनानियों के प्रति अपनी श्रद्धा दिखाकर उसका विश्वास प्राप्त करो। ऐसा यत्न करो कि वह हर बात में तुम्हीं से मंत्रणा करे। वह सैनिक आदमी है। सोचता कम है—जोश में अधिक आता है। उसका विश्वास प्राप्त करना मुश्किल नहीं होगा। इसके बाद क्या करना है—यह जीवसिद्ध तुम्हें समय-समय पर आकर बताता रहेगा।"

पालक ने नमस्कार कर कहा—"गुरुदेव की जय हो—कोई और आज्ञा।"

चाणक्य बोले "और कुछ नहीं—तुम आज ही चले जाओ और देखो—जल्दी ही जाकर सबसे पहली बात उसे यह बताना [illegible] में है।"

[illegible] कहा—"[illegible] का ?"

[illegible] बोले—"हाँ उसी का। तुम भी [illegible] जाओ! बाहर एक आदमी नकाब पहने [illegible] खड़ा है। उसे अन्दर भेज देना?"

और बालक के बाहर जाते ही नकाब पहने एक आदमी अन्दर आया। चाणक्य ने कहा—"नकाब उतार दो प्रसेन-जित! बस!"

प्रसेनजित ने नकाब उतार प्रणाम किया। चाणक्य के पास बैठ कर कहा—"मैं फीलोपोस को महाभारत की कहानी सुना रहा था कि उस आदमी ने, जिसे जीवसिद्ध प्रसेनजित समझता हूँ, मेरे पास आकर आपका आदेश सुनाया। मैं हाज़िर हूं। आप के आदेश के मुताबिक नकाब पहन कर। गुरुदेव आज्ञा करें।"

चाणक्य धीमे से बोले "नकाब पहन कर आना ही ठीक था। यहाँ सभी मेरे विश्वस्त आदमी हैं। लेकिन फिर भी—विश्वस्तेपु अपिन विश्वसेत—यही चाणक्य का असूल है। अच्छा इधर आओ—सुनो—!"

और बहुत ही धीमे स्वर में पता नहीं उन्होंने उसके कान में क्या कहा।

प्रसेनजित चौंक कर बोला—"हत्या ?"

चाणक्य धीरे से बोले—"यह राजनीति है, धर्म नहीं। धर्म में एक बात अनुचित हो सकती है। राजनीति में वही उचित हो जाती है। याद रखो—पुरु के महल में—! अब जाओ। काम हो जाने के बाद तुम शीघ्र ही इस मन्दिर

में आ जाना। यहां से आगे जाने का प्रबन्ध सम्पूर्ण हुआ मिलेगा।"

प्रसेनजित ने उठकर नकाब पहनते हुए कहा—"गुरुदेव की जय हो!"

चाणक्य ने हाथ उठा कर कहा—"भगवान् तुम्हें सफलता दें!"

और प्रसेनजित के बाहर जाते ही चाणक्य ने पुकारा—जीवसिद्धि!"

बाहर से भीतर आते हुए जीवसिद्धि ने कहा—"गुरुदेव!"

चाणक्य बोले—"जीवसिद्धि! आज से सातवें दिन एक आदमी मन्दिर में आयेगा। उसे शीघ्रातिशीघ्र कुलूत राज्य में भेजने का प्रबन्ध करना होगा। सब जगह घोड़े तय्यार रहने चाहिएं?"

जीवसिद्धि ने मन में कोई हिसाब लगाते हुए कहा—"ऐसा ही होगा गुरुदेव!"

चाणक्य बोले—"और चन्द्रगुप्त के तक्षशिला वाले ठिकाने पर आज ही एक संदेश भेजना होगा। उसे कहना होगा कि आज से सातवें दिन यहां आये बिना ही वह महाराज पुरु के महल में जाये। उससे कोई विशेष बात करने की आवश्यकता नहीं। केवल महल के पहरेदारों और दूसरे राजपुरुषों को मालूम हो जाय कि चन्द्रगुप्त पुरु को मिलने आया था। मिलने के बाद उसे जल्दी ही चले आना होगा। हो सकता है पुरु उसे पकड़वाने का यत्न करे। यह यत्न सफल नहीं होना चाहिए।"

जीवसिद्धि ने कुछ भी न समझ कर कहा—"जो आज्ञा महाराज!"

चाणक्य बोले—"खूब अच्छी तरह समझा

लिखना होगा—आज से सातवें दिन—पुरु के महल में—!"

× × ×

और सातवें दिन पुरु के महल में—द्वार पर एक सशस्त्र क्षत्रिय ने आकर कहा—'मैं चंद्रगुप्त हूँ। महाराज पुरु को मेरा प्रणाम कहना !'

द्वारपाल ने आँखें फाड़ कर नवागत की ओर देखा। और फिर कहा—"आप प्रतीक्षागृह में पधारिये। महाराज के पास अभी सन्देश पहुँचेगा।"

चन्द्रगुप्त प्रतीक्षागृह में, जो महल के द्वार के साथ ही था—जा बैठे। बैठे हुए सामने बने एक शिवमन्दिर के चित्र को देखते हुए उन्होंने कहा—"गुरुदेव क्या चाहते हैं, मैं समझ नहीं सका।"

इसी समय प्रतिहारी ने आकर कहा—"चन्द्रगुप्त को महाराज पुरु ने नमस्कार भेजा है। मेरे साथ आइये—!"

अंधकार हो रहा था। चन्द्रगुप्त प्रतिहारी के साथ आगे बढ़े। प्रतिहारी ने कहा—"मैंने आपकी ख्याति सुनी है। मेरा दिल आपके लिए पूजा से परिपूर्ण है। लेकिन यहां आकर आपने अच्छा नहीं किया।"

चन्द्रगुप्त ने कहा—"प्रतिहारी ! मैं आभारी हूँ। तुम्हारे जैसे प्रेमियों के होते चन्द्रगुप्त पर कोई आफ़त नहीं आ सकती !"

प्रतिहारी ने कहा—"भगवान् आपकी रक्षा करें। इस सामने वाले प्रासाद में बैठिए। महाराज अभी इधर ही आयंगे।"

चन्द्रगुप्त ने उस प्रासाद में प्रविष्ट होते हुए, जिसमें दीपक जल रहे थे, कहा—"मैं प्रतीक्षा करूंगा। मुझे उनसे आवश्यक काम है !"

इसी समय महल के द्वार पर प्रसेनजित के साथ एक सुन्दर किन्तु प्रौढ़ यूनानी प्रविष्ट हुआ। द्वारपाल ने तुरही बजा कर

कहा—"महामान्य फीलीपोस की जय !"

साथ ही उससे अगले द्वार के प्रहरी ने कहा—"महाराज फीलीपोस की जय !"

और तब एक के बाद दूसरे—कितनेही आदमियों ने कहा—"महामान्य फीलीपोस की जय !"

फीलीपोस ने अपने साथ चलते हुए प्रसेनजित को कहा—"तुम्हारे जैसे समझदार आदमी मैंने बहुत कम देखे हैं। इस समय अचानक पुरु के महल में आ जाने से—अगर कोई षड्यन्त्र हो रहा होगा, तो उसका पता आसानी से मिल जायगा। चारों ओर निगाह रखो। हमारे जासूस ने बताया था कि चन्द्रगुप्त यहां आया है।"

प्रसेनजित ने कहा—"मैं उसी को ढूंढ रहा हूँ—जरा ठहरिये—वह सामने वृक्ष के पीछे कौन है ?"

वे उस सड़क से होकर आगे बढ़ रहे थे जिस पर से हो कर अभी-अभी चन्द्रगुप्त गये थे। दोनों ओर बाग था। और बाग में अंधेरा। उसी अंधेरे में खड़े एक वृक्ष की ओर इशारा करके प्रसेनजित ने कहा था।

फीलीपोस ने ध्यान से देखा। बोला—"कुछ दिखाई तो नहीं देता।"

प्रसेनजित ने कहा—"नहीं सरकार—वहां कोई है। आपको अगर भय मालूम होता है तो मैं जरूर देखूंगा।"

फीलीपोस ने अकड़ कर कहा—"यूनानी को भय नहीं लगता—चलो मैं भी चलूं !"

और वह प्रतिहारी जो अभी अभी चन्द्रगुप्त को प्रतीक्षागार में छोड़कर आया था—सड़क पर चुपचाप खड़ा-खड़ा देखता रहा कि वह दोनों अंधेरे की ओर बढ़े हैं। एक वृक्ष के पास गए हैं। और वृक्ष के पास पहुंचते ही प्रसेनजित ने अपनी

था कि निकट का मित्र महाराज पुरु होगा।"

यूडेमियस ने तेजी से इधर से उधर और उधर से इधर चलते हुए कहा—"अब तुम्हारा ज्योतिष क्या कहता है। अब क्या होगा ?"

पालक ने अपनी अँगुलियों पर कुछ हिसाब करते हुए कहा—"ज्योतिष कहता है कि आपका जीवन भी खतरे में है। लेकिन बचाव हो सकता है। आपकी बुद्धि ही आपको बचा सकती है !"

यूडेमियस ने चौंक कर कहा—"मुझे भी खतरा है ? मेरी बुद्धि मेरी बुद्धि—"और तब उसने चिल्ला कर कहा "एण्टी ओकस !"

एण्टी ओकस एक यूनानी सैनिक का नाम था। वह भीतर आया तो उसके सलाम करने से पहले यूडेमियस ने कहा—"एण्टी ओकस ! हमारे पास कुल कितने यूनानी सैनिक हैं ?"

एण्टी ओकस ने कहा—"तीन हजार सरकार !"

यूडेमियस ने पूछा—"सब के पास घोड़े ?"

एण्टी ओकस ने कहा—"नहीं सरकार—लेकिन हम पुरु के घोड़े ले सकते हैं। और हाथी भी !"

यूडेमियस ने कहा—"इन नदियों को पार करने के लिए हाथी ज्यादा मुफ़ीद साबित होंगे। जितने हाथी हमारे पास हैं और जितने घोड़े हैं, सब को अभी तैयार करो—सभी यूनानी सिपाही अभी मेरे साथ चलेंगे—हमें जल्दी से पुरु का राज्य छोड़ देना होगा !"

एण्टी ओकस ने सिर झुकाकर कहा—"ऐसा ही होगा। सरकार !"

यूडेमियस ने कहा—"और देखो—दरवाजे पर खड़े हुए पहरेदारों से कहो—जैसे ही महाराजा पुरु अन्दर आयें—

वैसे ही उसे क़त्ल कर दिया जाय—उसको मेरे पास लाने की जरूरत नहीं !"

एण्टी ओकस ने मुंह खोलकर आश्चर्य से सेनापति की ओर देखा। सेनापति ने चिल्ला कर कहा—"जाओ !"

उसके जाते ही पालक ने धीमे से कहा—"मेरा ज्योतिष कहता है कि आपकी बुद्धि सफल होगी। लेकिन यहां से जाकर अगर आप आम्भी के पास ठहर गए तो फिर खतरा हो सकता है ?"

यूडेमियस ने चिल्ला कर कहा—"मैं कहीं नहीं ठहरूंगा—मुझे जल्दी-से-जल्दी भारत से बाहर चले जाना है !"

: ७ :

और दूसरे दिन पुरु की राजधानी में झुण्ड के झुण्ड लोग बाजारों और राजपथों पर घूम रहे थे। बिफरे हुए लोग। उनके हाथों में शस्त्र थे जिन्हें वह चिल्ला-चिल्ला कर हवा में हिलाते थे। राजमहल के बाहर एक ऊंचे से स्थान पर एक सैनिक वेषधारी व्यक्ति खड़ा बाहें उठा उठा कर बोल रहा था। उसके आस-पास हजारों आदमी जोश के साथ खड़े थे—बार-बार उनके हाथ अपनी तलवारों पर चले जाते थे। सैनिक वेषधारी व्यक्ति ने कहा—"यूनानियों ने विश्वासघात किया है। महाराज पुरु अपने वचन में आबद्ध उनकी सहायता कर रहे थे। फिर भी उन्होंने उनकी हत्या की। उनके हाथी चुराए और डाकुओं की तरह भाग गए। यह विश्वासघात और मित्र-घात नहीं तो और क्या है ?"

भीड़ ने चिल्ला कर कहा—"मित्रघातों का सर्वनाश हो !"

× × ×

एक और स्थान पर दुकान के एक थड़े पर खड़ा एक व्यक्ति अपने सामने की भीड़ से चिल्ला-चिल्ला

रहा था—"मुझे विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि आर्य चंद्रगुप्त और महाराज पुरु दोनों मिलकर देश को यूनानियों से स्वतंत्र कराने का प्रयत्न करने वाले थे। यूनानियों को इसका पता मिल गया। उन्होंने महाराज पुरु को कायरों की तरह अपने घर बुला कर मार डाला। लानत हो उन पर। शायद उन्होंने चंद्रगुप्त को भी मार डाला है। वह दोनों देश की स्वतन्त्रता के लिए बलि हुए हैं।"

× × ×

एक और स्थान—एक जैन साधु—वैसे ही जोश से बोल रहा था—"मैं जैन हूँ—लेकिन आज जैन या आर्य का तो कोई सवाल नहीं। यह देश जैसा आर्यों का है वैसा जैनियों का है। स्वतन्त्रता पर पहले हमला हुआ था और आज हमारे मान पर—हमारी मित्रता पर हमला किया गया है।

भीड़ में से किसी ने चिल्ला कर कहा—"शठं शाठ्यं त !"

जैन साधु ने कहा—"मैं अहिंसा का पुजारी हूँ। लेकिन जिन लोगों ने हमारे देश को रौंद डाला, जिन्हों ने पुरु जैसे पुण्यवान महात्मा को मार डाला, जिन्होंने आर्य चंद्रगुप्त की हत्या की—उनके लिए अहिंसा नहीं है!—आगे बढ़ो फ़ीलीपोस और यूडेमियस के महलों को आग लगा दो!"

बिफरी हुई भीड़ तलवारें हिला-हिला कर आगे बढ़ी। चिल्ला-चिल्ला कर उसने कहा—"आर्यचंद्रगुप्त का बदला लो। महाराज पुरु का बदला लो।"

फिर किसी ने कहा—"चंद्रगुप्त की जय!"

किसी और ने कहा—"महाराज पुरु की जय!"

फ़िलीपोस और यूडेमियस के महल पास पास थे—कितने ही रास्तों से कितने ही लोगों ने आकर इन्हें आग लगा दी। महल धू-धू करके जलने लगे।

भीड़ने चिल्लाकर कहा—"यूनानियों का निशान मिटा दो !"

किसी ने चिल्लाकर उत्तर दिया—"जय स्वतंत्र आर्य देश !"

और जलते हुए महलों के पास ही उसी जैन साधु ने एक ऊंचे स्थान पर खड़े होकर कहा—"ठहरो भाइयो, इधर आओ !" कितने ही लोगों ने उसके पास आकर अपने-अपने शंख बजाए। शंखों की ध्वनि सुनकर सबके सब लोग साधु के इर्द-गिर्द जमा होने लगे।

कितने ही लोगों ने पुकार-पुकारकर कहा—"सुनो—जैन महात्मा क्या कहते हैं, सुनो !"

और जैन साधु ने खामोश हो जाने पर कहा—"सुनो सुनो—आज नगर में जगह-जगह आग लगी हुई है। यूनानियों के मकान और महल जलाकर राख बना दिए गए हैं। लेकिन सवाल यह है कि इसके बाद क्या होगा। महाराज पुरु आज नहीं हैं। भारत रक्षक आर्य चन्द्रगुप्त भी नहीं हैं। तब देश का प्रबन्ध कौन करेगा? यूडेमियस फिर वापस आ सकता है। यदि वह आगया तो अत्याचार की एक ऐसी गाथा शुरू होगी जिसका अन्त नहीं होगा। काश—आज देशरक्षक चन्द्रगुप्त ही जीवित होते !"

भीड़ में से किसी ने चिल्लाकर कहा "आर्य चन्द्रगुप्त जीवित हैं। मैंने थोड़ी ही देर पहले उन्हें देखा है।"

जैन साधु ने हर्ष के साथ चिल्लाकर कहा—"किसने कहा यह? किसने देखा आर्य चन्द्रगुप्त को ?"

भीड़से एक आदमीने आगे बढ़कर साधुके पास आकर और भीड़ की ओर मुंह करके कहा "मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि आर्य चन्द्रगुप्त जीवित हैं। थोड़ी ही देर पहले मैंने उन्हें घोड़े पर

और पता नहीं एक आदमी ने कहां से एक ताज ले आगे बढ़ कर—उसे चन्द्रगुप्त के सिर पर रख दिया । साथ ही कहा—"प्रजा की इच्छा से भारत के महान् रक्षक को मैं मालव, कुलूत, पौरव, तक्षशिला और पर्वत देशों का महाराज घोषित करता हूँ ।"

भीड़ ने अपने शिरस्त्राण और हाथ की चीजें उछाल-उछाल कर कहा—"महाराज चन्द्रगुप्त की जय !"

चन्द्रगुप्त ने धीरे से सिर झुका दिया ।

और पीछे फ़ीलीपोस और यूडेमियस के महल अब भी धू-धू करके जल रहे थे ।

× × ×

जेहलम के किनारे उसी झोंपड़ी में—सायंकाल के समय—महात्मा चाणक्य दीपक के पास बैठे थे । चन्द्रगुप्त उनके चरणों पर शीश रखे प्रणाम कर रहे थे ।

चाणक्य ने उन्हें उठा कर कहा—"उठो सम्राट, आज भारत स्वाधीन हुआ—आज चाणक्य की पहली इच्छा पूर्ण हुई !"

चन्द्रगुप्त ने एक बार फिर प्रणाम करके कहा—"गुरुदेव की कृपा से !"

चाणक्य बोले—"आत्म-विश्वास और स्वार्थत्याग से सब कुछ होता है—लेकिन अब तक जो कुछ हुआ, वह हमारे काम का केवल एक भाग है । यूनानी चले गए । भारत स्वाधीन हुआ । लेकिन जैसे छोटे-छोटे राज्यों में यह देश बंटा हुआ है, उनकी मौजूदगी में यह स्वाधीनता किसी भी समय नष्ट हो सकती है । किसी भी समय कोई और सिकन्दर एक के बाद दूसरे और दूसरे के बाद तीसरे राजा को पराजित करता हुआ आगे बढ़ सकता है । स्वाधीनता को चिरस्थायी बनाने का एक ही तरीका है

कि सारा भारत एक हो। छोटे-छोटे राज्य मिट कर भारत भर में एकछत्र राज्य स्थापित हो। इसमें समय लगेगा, लेकिन इस के सिवा और कोई चारा नहीं!"

चन्द्रगुप्त ने हाथ जोड़ कर कहा—"गुरुदेव का स्वप्न पूरा हो!"

चाणक्य बोले—"पूरा होगा अवश्य-और तुम्हीं पूरा करोगे। एक दिन तुम ही भारत भर के सम्राट बनोगे!"

चन्द्रगुप्त की आंखों में आंसू आ गए। धीरे से बोले—"गुरुदेव के आशीर्वाद से!"—और फिर ठहर कर कहा—"लेकिन इस महान् यज्ञ में प्रधान मंत्री का कार्य आप को ही करना होगा!"

चाणक्य ने कहा—"सो तो करूंगा ही—लेकिन एकबार फिर वचन देना होगा—मेरी कोई भी आज्ञा टाली नहीं जायगी—!"

चन्द्रगुप्त ने उनके चरणों को छूकर कहा—"इस आज्ञा-पालन में अगर मैं कभी अपना शीश दे सका, तो अपने जीवन को सफल समझूंगा!"

चाणक्य ने उनके शीश पर हाथ रखकर कहा—"बहुत अच्छा सम्राट! तुम जा सकते हो। राजधानी में सारा प्रबन्ध तुम्हें पूर्ण हुआ मिलेगा। तुम्हारा मंत्रिमण्डल तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है!"

चन्द्रगुप्त ने फिर एक बार प्रणाम किया और बाहर चले गए।

चाणक्य ने पुकार कर कहा—"जीवसिद्धि!"

बाहर से भीतर आकर जीवसिद्धि ने महामंत्री!"

चाणक्य गंभीरता से बोले—"तुम्हारा अनुमान

आज से मैं सम्राट चन्द्रगुप्त का प्रधान मंत्री हूँ !"

जीवसिद्धि ने मुसकराते हुए कहा—"तब तो आज से हम महल में चलकर रहेंगे।"

चाणक्य चौंक कर बोले—"क्या ? महल में ? नहीं जीव-सिद्धि—महल में नहीं, मैं इसी झोंपड़ी में रहूँगा। आमोद और प्रमोद, विलास और ऐश्वर्य ब्राह्मण के लिए नहीं बनाये गए ! ब्राह्मण का काम केवल सेवा करना है, देश और जाति की सेवा। आमोद, प्रमोद, विलास और ऐश्वर्य राजाओं के लिए हैं—उन्हीं को मुबारिक हो। मैं तो यहीं रहूंगा। तुम भी यहीं रहोगे ! आगे से ऐसी बात नहीं कहना !"

जीवसिद्धि ने सिर झुकाकर कहा—"गलती हुई महामंत्री; फिर नहीं होगी !"

चाणक्य ने कहा—"अच्छा देखो—पर्वतेश्वरके राज्य में, कुलूत में, तक्षशिला में, इन्द्रप्रस्थ में, लिच्छवी राज में कापिल्य में, ताम्रलिपि में और मगध में हमारे जो आदमी हैं उन्हें आदेश भेजना होगा कि वह चन्द्रगुप्त की विजय के उपलक्ष में अपने-अपने नगरों में प्रदर्शन करें। भारत भर में चन्द्रगुप्त की जय-जयकार हो उठे। ऐसे भाषण हों कि लोग उसे भारत का रक्षक और देवता समझने लगें। इतना मान हो उसका, इतना यशगान कि यह छोटे-छोटे राजा भय से थर-थर कांपने लगे !"

जीवसिद्धि ने कहा—"ऐसा ही होगा महामंत्री ! चंद्रगुप्त के लिए तो हर राज्य के लोग अपने प्राण तक न्योछावर करने को तय्यार हैं।"

चाणक्य बोले—"मैं जानता हूँ। लेकिन जिस उद्देश्य से यह सारा प्रचार किया गया—उसे पूर्ण करने का समय अब आ पहुँचा। महामंत्री की मोहरें बन कर आ गई होंगी। उस मोहर को लगाकर मगध के सिवा तमाम राज्यों को लिखना होगा कि

यह पत्र मिलने के एक महीने के अंदर-अंदर चन्द्रगुप्त को कर देना—और सर्व राज्याधिकार इसे सौंपना स्वीकार करें अन्यथा उनके देश पर चढ़ाई कर दी जायगी इसी के साथ लिखना चन्द्रगुप्त यह सब कुछ अपने लिए नहीं करना चाहते—विदेशी हमलों के मुकाबले में भारत भर के अंदर एक राज्य सत्ता बनाने के लिए ही करना चाहते हैं !"

जीवसिद्धि ने कहा—"समझा, गुरुदेव ! ऐसा ही होगा।"

चाणक्य ने कहा—"पत्र मुझे दिखा लेना। मोहर मेरे सामने लगाना। और इस एक महीने में विभिन्न राज्यों के अंदर इतने प्रदर्शन होने का आदेश भेज देना कि राजाओं के लिए हमारी बात मानने के सिवा कोई चारा न रहे !"

जीवसिद्धि ने शीश झुका कर कहा—"गुरुदेव की जय हो-ऐसा ही होगा !"

चाणक्य ने कहा—"अब जाओ बाहर पालक होगा। उसे भेज दो ?"

जीवसिद्धि के बाहर जाते ही पालक भीतर आया। अपने पुराने वेष में प्रणाम करके उसने कहा, "एक समचार है गुरुदेव !"

चाणक्य धीमे से बोले, "मैं जानता हूँ काम की अधिकता के कारण मैं तुम्हें पहले बुला नहीं सका। यूडेमियस को भगाने में तुम्हें सफलता हुई—मैं बधाई देता हूँ।"

पालक ने कहा—"लेकिन मेरे कारण पुरु जैसे महात्मा की हत्या हुई इसका मुझे दुख है।"

चाणक्य ने गम्भीरता से कहा—"पुरु महात्मा था—यह मैं जानता हूँ। लेकिन देश को आज महात्माओं की नहीं राजनीतिज्ञों की जरूरत है। पुरु के मरण से देश को अधिक लाभ हुआ। जीवन से हानि होती !—लेकिन यूडेमियस का समाचार कहो—"

पालक ने उत्तर में कहा—"यूडेमियस का तो कोई समाचार नहीं गुरुदेव—एक और समाचार है। बहुत महत्वपूर्ण !"

चाणक्य गंभीरता से बोले—"क्या ?"

पालक ने कहा—"यूडेमियस के चले जाने के बाद एक संदेशवाहक कबूतर उसके महलमें आया। यूनानी में एक संदेश लिखा था। सिकंदर की मृत्यु हो गई है।"

चाणक्य ने चौंक कर कहा—"सिकन्दर—मर गया—लेकिन देखो—अभी यह बात किसी को मालूम होने न पाये। कम-सेकम एक महीने तक—कोई और बात ?"

पालक ने सिर झुका कर कहा—"केवल एक—जानते हैं—मैं चित्रकार हूँ !"

चाणक्य ने मुसकराकर कहा—"ज्योतिषी महाराज ! लेकिन उस से क्या ?"

पालक ने नीचे देखते हुए कहा—"मैंने एक चित्र बनाया है—यह—!"

और उसने कपड़े में लिपटा हुआ एक चित्र महामंत्री के आगे रख दिया।

चाणक्य ने कपड़े को हटाया। चित्र को देखा। और एकाएक उनके चेहरे का रंग बदल गया। चित्र को ध्यान से देखते हुए बोले—"माया—मेरी बेटी—!"

पालक ने कहा—"यूडेमियस के महल में समय काफी था। मैं बहन माया का यह स्मृति-चित्र बनाता रहा !"

चाणक्य ने एक लम्बा सांस लेकर कहा—"माया—ग़रीब बच्ची ! पता नहीं वह कहां है। मैं यूनानियों को निकाल सका। चन्द्रगुप्त को सम्राट बना सका। लेकिन अपनी माया को नहीं पा सका। माया ! कहां है तू ? बोल नहीं सकती ! एक बार बोल तो—मैं आकाश-पाताल एक कर दूंगा।"

और उनका उन-बड़ी बड़ी आंखों से आंसू निकल पड़े

पालक ने शीघ्रता से कहा—"गुरुदेव ! महामंत्री !"

चाणक्य तस्वीर को कपड़े में लपेटते हुए बोले—"इसे ले जाओ, पालक ! इसे मेरे पास मत रखो ! लेकिन चित्र बनाते समय एक बात तुम भूल गए। माया के दाएं गाल पर एक साथ दो तिल हैं।"

पालक ने कहा—"मैं भूल गया था महाराज, अब आज्ञा चाहता हूँ।" और वह तस्वीर को उठा हाथ जोड़ माथा नवांकर बाहर चला गया !

: ८ :

हरिपुर के निकट महाराज पर्वतक के उस उद्यान में जिसके बाहर पहले पहल चंद्रगुप्त और चाणक्य की भेंट हुई थी—छाया एक चौकी पर सिर रखे उदास, लम्बे स्वर में, आहें भर-भरकर एक गीत गा रही थी—

"यह कौन ?
यह कौन खड़ा हम दोनों के बीच ?
कौन है छाया बनकर बादल
प्यार के चांद के ऊपर ?
बोलो —कुछ तो बोलो— खड़े हुए क्यों मौन ?
देश तुम्हारा, देश हमारा
काज राज के—चालें, नीति सारी
मैं इनको क्या जानूं—? क्या समझूं ?
मैं चाहती हूँ प्यार की दुनिया
प्यार में खोना, प्यार में रोना—
तक तक कर दो नयन किसी के पागल होना
पागल होना।
पर यह कौन ?

पालक ने उत्तर में कहा—"यूडेमियस का तो कोई समाचार नहीं गुरुदेव—एक और समाचार है। बहुत महत्वपूर्ण !"

चाणक्य गंभीरता से बोले—"क्या ?"

पालक ने कहा—"यूडेमियस के चले जाने के बाद एक संदेशवाहक कबूतर उसके महलमें आया। यूनानी में एक संदेश लिखा था। सिकंदर की मृत्यु हो गई है।"

चाणक्य ने चौंक कर कहा—"सिकन्दर—मर गया—लेकिन देखो—अभी यह बात किसी को मालूम होने न पाये। कम-सेकम एक महीने तक—कोई और बात ?"

पालक ने सिर झुका कर कहा—"केवल एक—जानते हैं—मैं चित्रकार हूँ !"

चाणक्य ने मुसकराकर कहा—"ज्योतिषी महाराज ! लेकिन उस से क्या ?"

पालक ने नीचे देखते हुए कहा—"मैंने एक चित्र बनाया है—यह—!"

और उसने कपड़े में लिपटा हुआ एक चित्र महामंत्री के आगे रख दिया।

चाणक्य ने कपड़े को हटाया। चित्र को देखा। और एकाएक उनके चेहरे का रंग बदल गया। चित्र को ध्यान से देखते हुए बोले—"माया—मेरी बेटी—!"

पालक ने कहा—"यूडेमियस के महल में समय काफ़ी था। मैं बहन माया का यह स्मृति-चित्र बनाता रहा !"

चाणक्य ने एक लम्बा सांस लेकर कहा—"माया—ग़रीब बच्ची ! पता नहीं वह कहां है। मैं यूनानियों को निकाल सका। चन्द्रगुप्त को सम्राट बना सका। लेकिन अपनी माया को नहीं पा सका। माया ! कहां है तू ? बोल नहीं सकती ! एक बार बोल तो—मैं आकाश-पाताल एक कर दूंगा।"

में एक राज की जरूरत है। एक सत्ता की। तभी तो वह देश बलवान होगा। तभी तो संसार इसकी पूजा करेगा। और इसे

देखकर थर-थर कांपेगा। नहीं तो यूनानी फिर आक्रमण करेंगे और छोटे-छोटे राज्य फिर उसकी विशाल सेना के आगे सिर झुका देंगे।—मैं अभी महाराज के पास जाऊँगा—उन्हें बताऊंगा कि उनके हठ से इस घर का सर्वनाश हुआ जा रहा है। घर में एक अबोध बालिका रो-रोकर हलकान हुई जाती है और देश में स्वतंत्रता की रोती हुई देवी अभिशापपूर्ण आंखों से उनकी ओर देख रही है। उनका हठ सब को—सारे देश को नष्ट......।"

छाया ने जल्दी से भाई के मुंह पर हाथ रखकर कहा—"ऐसा नहीं करना भैया! ऐसा करने का कोई लाभ नहीं होगा। मैं उनके पास गई थी। वह अर्धनग्न नाच देख रहे थे। मेरी बात सुनकर चिल्लाकर बोले—चली जाओ यहां से छोकरी—यह राज की बात है। तुम लोग इसे नहीं समझ सकते, और वह मदिरा का पात्र उठाकर पीने लगे। मैं रोती हुई चली आई!"

मलयकेतु चिल्ला कर बोले—"पिता या पाषाण! बेटी को रोते देखकर भी उनके हृदय में दया नहीं आई! इस राज्य को आखिर वह कब तक साथ लिये रहेंगे। क्या मरते समय गठड़ी बांध कर इसे साथ ले जायंगे?"

छाया ने फिर उनके मुंह पर हाथ रखकर कहा—"क्या कहते हो भैया! वह हमारे पिता हैं। उन्हें कुछ भी मत कहो। मेरे भाग्य में रोना बदा है—मुझे चुपचाप रोने दो!"

मलयकेतु ने बेहद दुःख के साथ कहा-"बहन! छाया!" और दोनों की आंखों से टप-टप करके आंसू गिरने लगे!

× × ×

चाणक्य अपनी कुटिया में बैठे थे। जीवसिद्धि अन्दर आया—प्रणाम करके खड़ा हो गया। उसके हाथ में भोजपत्रों

कौन खड़ा है हम दोनों के बीच
प्यार के चांद के ऊपर ?—!"

और जब वह गा रही थी तो तालाब के किनारे बने उस विशाल प्रासाद के अंदर - उसी कक्ष में—लम्बे-लम्बे बालों वाला एक युवक जिसके नाक के नीचे भूरे रंग की नयी मूँछें अभी एक ही वर्ष पहले निकली थीं; चुपचाप खड़ा था। उम्र में वह छाया से कुछ ही बड़ा था, शायद दो या तीन वर्ष। उसके चेहरे पर विषाद की गहरी रेखा थी। छाया का गीत सुनकर उसकी आंखों में आँसू आगये थे। गीत के समाप्त होते ही विषण्ण स्वर में उसने कहा—"छाया"

छाया ने चौंककर पीछे देखा और नवयुवक की आंखों में आंसू देखकर कहा —"भैया ! युवराज !"

महाराज पर्वतक के युवराज कुमार मलयकेतु विषण्ण भाव से वहीं खड़े रहे। छाया दौड़ कर उनके पास गई। उनकी आंखों के आंसू पोंछकर जल्दी से बोली—"रोओ मत भैया !"

मलयकेतु धीरे से बोले—' मुझे भैया न कहो बहिन ! जो भाई अपनी छोटी बहन को रोते हुए देखता है। देखता है और कुछ नहीं कर पाता —उसे भाई न कहो। वह पाषाण है !"

छाया के होंठों पर एक सिसकी आ गई। उसे दबाकर वह बोली—"तुम्हारा इसमें क्या दोष ? मेरा संसार मुझ से रूठ गया है। उसके हृदय में है केवल एक धुन—देश को स्वतंत्र बनाना—उसकी शक्ति को बढ़ाना। पिता नहीं मानते। मेरे ही पिता उनके रास्ते में आखड़े हुए हैं। इसमें तुम्हारा क्या दोष ? तुम क्यों रोते हो ?"

मलयकेतु ने एक लम्बा सांस लेकर कहा—"इसलिए कि वह मेरे भी पिता हैं। युवराज बनाकर भी उन्होंने मेरी सलाह नहीं पूछी। चंद्रगुप्त ने जो कुछ कहा—"वह गलत तो नहीं है। देश

चाणक्य चौंक कर बोले—"पर्वतक—पर्वतक ने क्या लिखा है?"

जीवसिद्धि ने भोजपत्र को धीरे-धीरे पढ़ा—"पर्वतक ने लिखा है—पर्वतेश्वर की सेनाएं मगध के उद्दण्ड युवक और हरीपुर के उच्छृंखल ब्राह्मण का सामना करने को हर समय तय्यार हैं। अगर हम पर आक्रमण किया गया तो हम उन दोनों का सिर—!"

चाणक्य ने चिल्लाकर कहा—"पढ़ो-पढ़ो क्या लिखा है?"

जीवसिद्धि ने डरते-डरते पढ़ा—"हम इन दोनों का सिर काट कर अपनी सीमा पर लगा देंगे!"

चाणक्य की आंखों से आग बरसने लगी। खड़े होकर हाथ मलते हुए—सिर दबाते हुए—वह झोंपड़ी में उधर-से-इधर और इधर से-उधर चलने लगे। तब एकाएक खड़े होगए। भयभीत जीवसिद्धि ने आंखें नीची कर ली थीं। उसी अवस्था में उसने उनकी कड़कती हुई आवाज सुनी—"फिर अपमान—फिर बेइज्जती—"और उन्हों ने सामने पड़ी हुई एक यष्टिका को दोनों हाथों में पकड़ लिया। क्रोध से उनका सारा शरीर जला जा रहा था। दांत पीस कर बोले—"इसी पर्वतक के राज्य में मेरी कन्या का अपहरण हुआ था"—छत की ओर देखकर फिर बोले—"माया-मेरी माया—आज तक उसका कोई पता नहीं मिला—और आज एक बार फिर—एक बार फिर यह लम्पट और विलासी राजा मेरे सामने आ खड़ा हुआ है—यह चंद्रगुप्त का सिर काटेगा—ब्राह्मण का सिर काटेगा—पर्वतक! पर्वतक!"—और क्रोध से दांत पीसते हुए हाथ में पकड़ी यष्टिका को उन्होंने इतने जोर से दबाया कि वह टुकड़े-टुकड़े हो गई। उसे परे फेंकते हुए उन्होंने कहा—"इसी तरह-इसी तरह—"और तब वह जीवसिद्धि की ओर

पर लिखे हुए कितने ही पन्ने थे।

चाणक्य ने मुसकरा कर कहा-"हां, जीवसिद्धि-समाचार!"

जीवसिद्धि ने आज्ञा पाकर कहा—"कुलूत, लिच्छवी, वैशाली, हस्तिनापुर, शालिकोट, तक्षशिला और सिंधु देश के राजाओं ने हमारी बात मान ली है। सम्राट चंद्रगुप्त की सेनाएं इन राज्यों में दाखल हो चुकी हैं। सभी राजाओं के लिए आपकी आज्ञा के अनुसार आजीवन वेतन नियत कर दिये गए हैं।"

चाणक्य ने प्रसन्न होकर कहा—"ठीक-ठीक हुआ जीव-सिद्धि! चंद्रगुप्त आज ठीक अर्थों में सम्राट बना! आगे!"

जीवसिद्धि ने कहा—"बाबल से हमारे गुप्तचर ने लिखा है कि सैल्यूयस की बेटी कुमारी हेलेन—अब भी चंद्रगुप्त के प्रेम में दीवानी हो रही है!"

चाणक्य अट्टहास करके बोले—"खूब! गुप्तचर को लिखो कि यह प्रेम बढ़ता चला जाय। कम न हो। सैल्यूकस तो सिकन्दर के बाद अब पारस और बाबल का महाराज बन बैठा है। चंद्रगुप्त के लिए उसकी इकलौती बेटी का प्रेम लाभ होगा। हानिकर नहीं!"—और फिर कुछ सोचकर बोले—देखो, चंद्रगुप्त—शायद उसे पत्र लिखना न चाहे। लेकिन उसे जाकर कहना—यह मेरी आज्ञा है। चंद्रगुप्त हेलेन को पत्र लिखे। इतने प्यार से भरा कि हेलेन उसे पढ़ कर दुनिया की बाकी सारी बातें भूल जाय। यह पत्र शीघ्र ही चला जाना चाहिए!"

जीवसिद्धि ने कहा--"ऐसा ही होगा!"

चाणक्य बोले—"आगे!"

जीवसिद्धि ने कुछ रुक कर कहा-"हमारे पत्र के जवाब में महाराज पर्वतक ने लिखा है······!"

आई है गुरुदेव ! मुझे आज्ञा दीजिए-मैं सेना लेकर उसके राज्य को तहस-नहस कर दूं !"

चाणक्य कुछ सोचते हुए बोले-"इसकी आवश्यकता नहीं चंद्रगुप्त-जब तक पूरी मंजूरी न आजाय मैं भारतीय लोगों को आपस में लड़ने नहीं दूंगा। इन्हें अभी मगध की विशाल सेना से लड़ना है। यूनानियों का भय भी अभी दूर नहीं हुआ! इस समय नीति की आवश्यकता है। समझ की जरूरत है। सेना की नहीं! कल सुबह ही हमें चल देना होगा !"

चंद्रगुप्त ने शीश झुकाकर कहा-"गुरुदेव की आज्ञा !"

चाणक्य बोले-"एक बात और-आज शाम को मैं तुम्हारे प्रासाद में आऊंगा-तुम द्वारपाल को कह देना कि मुझे अंदर जाने की आज्ञा न दे !"

चंद्रगुप्त ने चौंक कर कहा-"गुरुदेव !"

चाणक्य कुछ सोचते हुए बोले-"घबराने की कोई बात नहीं-मैं चाहता हूं-दुनिया को मालूम हो कि तुमने मेरा अपमान किया है। मैं द्वारपाल से झगड़ा करूंगा। तुम उसी समय प्रासाद के द्वार पर आकर क्रोध से कहना—"ब्राह्मण ! तुम्हारी उच्छृंखलता मुझसे बर्दाश्त नहीं होती। तुम मेरे मित्रों को मेरा शत्रु बना रहे हो। चले जाओ यहां से ! आज से तुम मेरे प्रधान मन्त्री नहीं हो !"

चंद्रगुप्त ने उनके पांव छू कर कहा—"गुरुदेव ! यह मुझसे होगा। ऐसा राज्य मुझे नहीं चाहिए। ऐसी नीति मुझे चाहिए-मैं अपने गुरु का अपमान नहीं कर सकता, धोखा देने के लिए भी नहीं कर सकता !"

... हंसते हुए बोले-"पागल न बनो चंद्रगुप्त ! इसी बात में है। पर्वतक मुझसे घृणा करता

देखकर बोले-"जीवसिद्धि ! मैं इसी समय चंद्रगुप्त से मिलना चाहता हूं। इसी समय उसे जाकर बुला लेना होगा। और देखो-यहां लाने से हेलेन को वह पत्र लिखवा देना होगा। जल्दी जाओ !"

जीवसिद्धि भय के मारे बोल नहीं सका। केवल सिर झुकाकर चला गया। और चाणक्य वैसे ही क्रोध में जलते हुए बोले-"पर्वतक ! पर्वतक !" और उन्होंने उस टूटी हुई यष्टिका को एक बार फिर उठा लिया। घूर कर उसकी ओर देखा। और उसे भूमि पर फेंक कर पूरे जोर से अपना पांव उस पर रख दिया। क्रोध में वह इधर-से-उधर और उधर-से-इधर चलने लगे। हर बार वह टूटी हुई यष्टिका उनके पांव के नीचे आकर कुचली जाने लगी।

इसी अवस्था में आकर चंद्रगुप्त ने उन्हें देखा। जल्दी से आगे बढ़ कर उनके पांव पे सिर रख दिया। और हाथ जोड़कर कहा-"गुरुदेव !"

चाणक्य रुक गए। उन्हें उठाकर बोले-"बेटा ! कल सुबह तुम्हें पर्वतक के राज्य की ओर चल पड़ना होगा। मैं भी साथ चलूंगा। हम दोनों अपना वेष बदल कर चलेंगे। किसी को पता नहीं लगना चाहिए कि हम पर्वतक के राज्य में गए हैं।"

चंद्रगुप्त चौंककर बोले-"पर्वतेश्वर के राज्य में ?"

चाणक्य ने शांत होकर कहा-"हां, मैं जानता हूँ-तुम्हारी छाया विरह में पागल हो रही है। तुम उससे मिलना। मैं अपने गुप्तचरों से मिलूंगा। पर्वतकने हमारे राज्य में शामिल होने से इन्कार कर दिया है। उसने कहा है वह मेरा और तुम्हारा सिर काट कर अपनी सीमा पर लगा देगा।"

चंद्रगुप्त चिल्लाकर बोला-"आपका ?—उसकी शामत

आई है गुरुदेव ! मुझे आज्ञा दीजिए-मैं सेना लेकर उसके राज्य को तहस-नहस कर दूं !"

चाणक्य कुछ सोचते हुए बोले-"इसकी आवश्यकता नहीं चंद्रगुप्त-जब तक पूरी मजबूरी न आजाय मैं भारतीय लोगों को आपस में लड़ने नहीं दूंगा। इन्हें अभी मगध की विशाल सेना से लड़ना है। यूनानियों का भय भी अभी दूर नहीं हुआ ! इस समय नीति की आवश्यकता है। समझ की जरूरत है। सेना की नहीं ! कल सुबह ही हमें चल देना होगा !"

चंद्रगुप्त ने शीश झुकाकर कहा-"गुरुदेव की आज्ञा !"

चाणक्य बोले-"एक बात और-आज शाम को मैं तुम्हारे प्रासाद में आऊंगा-तुम द्वारपाल को कह देना कि मुझे अंदर जाने की आज्ञा न दे !"

चंद्रगुप्त ने चौंक कर कहा-"गुरुदेव !"

चाणक्य कुछ सोचते हुए बोले-"घबराने की कोई बात नहीं-मैं चाहता हूं-दुनिया को मालूम हो कि तुमने मेरा अपमान किया है। मैं द्वारपाल से झगड़ा करूंगा। तुम उसी समय प्रासाद के द्वार पर आकर क्रोध से कहना-"ब्राह्मण ! तुम्हारी उच्छृंखलता मुझसे बर्दाश्त नहीं होती। तुम मेरे मित्रों को मेरा शत्रु बना रहे हो। चले जाओ यहां से ! आज से तुम मेरे प्रधान मन्त्री नहीं हो !"

चंद्रगुप्त ने उनके पांव छू कर कहा-"गुरुदेव ! यह मुझसे नहीं होगा। ऐसा राज्य मुझे नहीं चाहिए। ऐसी नीति मुझे नहीं चाहिए-मैं अपने गुरु का अपमान नहीं कर सकता, किसी को धोखा देने के लिए भी नहीं कर सकता !"

चाणक्य थोड़ा हंसते हुए बोले-"पागल न बनो चंद्रगुप्त ! देश का भला इसी बात में है। पर्वतक मुझसे घृणा करता

देखकर बोले–"जीवसिद्धि ! मैं इसी समय चंद्रगुप्त से मि
चाहता हूं। इसी समय उसे जाकर बुला लेना होगा।
देखो–यहां लाने से हेलेन को वह पत्र लिखवा देना हो
जल्दी जाओ !"

जीवसिद्धि भय के मारे बोल नहीं सका। केवल
झुकाकर चला गया। और चाणक्य वैसे ही क्रोध में
हुए बोले–"पर्वतक ! पर्वतक !" और उन्होंने उस टूट
यष्टिका को एक बार फिर उठा लिया। घूर कर उसकी
देखा। और उसे भूमि पर फेंक कर पूरे जोर से अपना
उस पर रख दिया। क्रोध में वह इधर-से-उधर और उध
इधर चलने लगे। हर बार वह टूटी हुई यष्टिका उनके
के नीचे आकर कुचली जाने लगी।

इसी अवस्था में आकर चंद्रगुप्त ने उन्हें देखा। जल्द
आगे बढ़ कर उनके पांव पे सिर रख दिया। और हाथ जो
कहा–"गुरुदेव !"

चाणक्य रुक गए। उन्हें उठाकर बोले–"बेटा !
सुबह तुम्हें पर्वतक के राज्य की ओर चल पड़ना होगा
भी साथ चलूंगा। हम दोनों अपना वेष बदल कर
किसी को पता नहीं लगना चाहिए कि हम पर्वतक के
में गए हैं।"

चंद्रगुप्त चौंककर बोले–"पर्वतेश्वर के राज्य में ?"

चाणक्य ने शांत होकर कहा–"हां, मैं जानता हूँ–
छाया विरह में पागल हो रही है। तुम उससे मिल
अपने गुप्तचरों से मिलूंगा। पर्वतकने हमारे राज्य में श
होने से इन्कार कर दिया है। उसने कहा है वह मेरा
तुम्हारा सिर काट कर अपनी सीमा पर लगा देगा।"

चंद्रगुप्त चिल्लाकर बोला–"आपका ?—उसकी

आ जाने दो !"

आने वाले इन व्यक्तियों में से एक ने कहा —"सुबह तो हो चली। हम पूरी नाव का किराया देंगे। हमें जल्दी ही अपने घोड़ों के साथ दूसरे पार पहुँचना है!"

नाविक ने एक बार फिर उनकी ओर देखा और कहा—'पूरी नाव का आधा स्वर्ण लगेगा !"

इसी पहले व्यक्ति ने कहा—"वही मिलेगा । नाव खोलो !"

वह दोनों व्यक्ति और दोनों घोड़े थोड़ी ही देर में नाव पर थे - नाविक ने पाल खोल दिये ! डांड लगाने लगा। दूसरे पार पहुँचे तो दो में से एक व्यक्ति ने अर्ध स्वर्ण नाविक के हाथ पर रख दिया। दोनों व्यक्ति घोड़े पर चढ़े और तेजी से एक ओर बढ़ने लगे।

धीरे-धीरे सूर्य ऊपर उठ आया।

धीरे-धीरे रोशनी फैली—

दोनों घुड़सवारों में से एक ने अपना घोड़ा रोकते हुए कहा—"गुरुदेव !"

दूसरे ने अपने मुंह पर से कपड़ा हटाते हुए कहा—"यहां गुरुदेव नहीं चलेगा। कुछ देर के लिए मैं न तुम्हारा प्रधानमंत्री हूं —न तुम्हारा गुरुदेव—तुम हो वैशाली के नगर सेठ प्रतापदित्य और मैं हूँ तुम्हारा शरीर रक्षक विष्णु—!"

पहले ने घोड़े से उतरते हुए कहा—"गुरुदेव ! मैं जानता हूँ—यह आपकी नीति है - लेकिन आपको सेवक कहकर पुकारने की शक्ति तो मेरी जिह्वा में नहीं है। चन्द्रगुप्त जिस दिन महात्मा चाणक्य को सेवक समझने या कहेगा—उसी दिन—मैं सच्चे हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि भगवान् उसका सर्वनाश कर दें !"

है। उसके गुप्तचर यही कोशिश भी करते रहते हैं कि मेरी और तुम्हारी लड़ाई हो जाय—पर्वतक को और उसके गुप्तचरों को विश्वास होना चाहिए कि उनका प्रयत्न सफल हुआ है। उनका यह विश्वास ही उनका सर्वनाश करेगा! और तुम्हारे हृदय को–मैं मानता हूं—तुम्हारी गुरुभक्ति से परिचित हूँ। उसके लिए कोई चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।"

चंद्रगुप्त ने सिर झुकाकर कहा—"बहुत कठिन बात है प्रभु! लेकिन गुरुदेव की इच्छा—गुरुदेव की आज्ञा के आगे चंद्रगुप्त का मस्तक नत है!"

चाणक्य ने कहा—"भगवान तुम्हें दीर्घायु और पूर्ण विजय दें! आज शाम को मैं तुम्हारे प्रासाद पर आऊंगा। मेरा अपमान करने के बाद तुम अपने मंत्रिमंडल को बुलाओगे। उन्हें आदेश दोगे कि अपना-अपना काम सुचारु रूप से करते रहें—और कल सुबह हम दोनों मुंह अंधेरे चले जायंगे।"

चंद्रगप्त ने सिर झुकाकर कहा—"गुरुदेव की इच्छा पूर्ण हो!" और वह बाहर चले गए।

चाणक्य ने नीचे पड़ी टूटी यष्टिका को उठाकर कहा—"पर्वतक-पर्वतक-मेरी मुट्ठी में है!"

: ६ :

दूसरे दिन प्रभात के झुटपुट में दो आदमियों नें जेहलम के तट पर खड़ी एक नाव के नाविक को आकर कहा–"उस पार चलोगे भाई!"

नाविक ने आंखउठा कर उनकी ओर देखा। दोनों दो घोड़ों की लगामें पकड़े खड़े थे। अन्धेरे में उनके ढके हुए मुंह दिखाई नहीं दिए।

नाविक ने एकलम्बी उबासी लेकर कहा–"इतनी सुबह नाव कौन खोलेगा भाई! थोड़ी देर ठहरो। कुछ और लोगों को

आ जाने दो !"

आने वाले इन व्यक्तियों में से एक ने कहा —"सुबह तो हो चली। हम पूरी नाव का किराया देंगे। हमें जल्दी ही अपने घोड़ों के साथ दूसरे पार पहुँचना है!"

नाविक ने एक बार फिर उनकी ओर देखा और कहा— 'पूरी नाव का आधा स्वर्ण लगेगा !"

इसी पहले व्यक्ति ने कहा—"वही मिलेगा । नाव खोलो !"

वह दोनों व्यक्ति और दोनों घोड़े थोड़ी ही देर में नाव पर थे – नाविक ने पाल खोल दिये ! डांड लगाने लगा। दूसरे पार पहुँचे तो दो में से एक व्यक्ति ने अर्ध स्वर्ण नाविक के हाथ पर रख दिया। दोनों व्यक्ति घोड़े पर चढ़े और तेजी से एक ओर बढ़ने लगे।

धीरे-धीरे सूर्य ऊपर उठ आया।

धीरे-धीरे रोशनी फैली—

दोनों घुड़सवारों में से एक ने अपना घोड़ा रोकते हुए कहा—"गुरुदेव !"

दूसरे ने अपने मुंह पर से कपड़ा हटाते हुए कहा—"यहां गुरुदेव नहीं चलेगा। कुछ देर के लिए मैं न तुम्हारा प्रधानमंत्री हूं —न तुम्हारा गुरुदेव—तुम हो वैशाली के नगर सेठ प्रतापदित्य और मैं हूँ तुम्हारा शरीर रक्षक विष्णु—!"

पहले ने घोड़े से उतरते हुए कहा—"गुरुदेव ! मैं जानता हूँ—यह आपकी नीति है – लेकिन आपको सेवक कहकर पुकारने की शक्ति तो मेरी जिह्वा में नहीं है। चन्द्रगुप्त जिस दिन महात्मा चाणक्य को सेवक समझने या कहेगा—उसी
हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि
कर दें !"

चाणक्य ने जल्दी से घोड़े से उतरते हुए कहा—"खामोश—यह गुरुभक्ति का समय नहीं। हवा के भी कान होते हैं। हमने भेष बदल लिये, नाम बदल लिये—अब कुछ देर के लिए अपने असली नाम और भेष को भी भूल जाना होगा—"

चन्द्रगुप्त ने कहा—"कल प्रासाद के द्वार पर आपका जो अपमान हुआ—उसकी ग्लानि मैं कभी दिल से निकाल नहीं सकूंगा।"

चाणक्य क्रोध से बोले—अब बस भी करोगे या नहीं—मालूम होता है नगरसेठ का घोड़ा थक गया है!—लेकिन थोड़ा ही और चलने पर इन्हें नये घोड़े तय्यार मिलेंगे—अब चलो—इन्हें बहुत दूर जाना है—रास्ते में रुकना ठीक नहीं!"

और वह दोनों फिर घोड़े पर चढ़े। फिर आगे बढ़े।

× × ×

एक बार फिर हरीपुर के निकट पर्वतक का उद्यान। उद्यान में विशाल तालाब के किनारे बना राज महल। महल में दरबार कमरा जिसे उन दिनों में मंत्रणाकक्ष कहते थे। मपूराकार मदिरापात्रों से कमलाकार प्यालों में मदिरा उड़ेली जा रही थी। सामंतगण मस्त थे। महाराज पर्वतक आधी खुली आंखों से सामने नाचती हुई नर्तकी की कामपूर्ण चेष्टाओं को देख रहे थे। रह-रह कर वह सामन्त गण कहते थे—'वाह! वाह!'

इसी समय मंत्रकक्ष में राजकुमारी छाया ने जल्दी से प्रवेश किया। नाच बंद हो गया। सामंतगण संभल कर बैठ गए। एक दम सन्नाटा-सा छा गया। महाराज पर्वतक ने अधलेटी अवस्था से उठ कर, बैठते हुए कहा—"छाया! तुम यहां?"

छाया ने शीश नवा कर कहा—"हां, पिता जी! आज सारी मर्यादा को भूल कर—लज्जा को छोड़ कर—मैं आपके

इस विलास-भवन में आ गई हूँ जिसे आप मंत्रणाकक्ष कहते हैं !"

पर्वतक ने उतावले हो कर कहा—"लेकिन कारण—कारण क्या है ?"

छाया ने सिर उठाकर कहा—"कारण है यह कि आप मौर्य्य राज्य पर हमला करने की तय्यारी कर रहे हैं! मैंने सुना है आप की सेनाएं तय्यार हैं। केवल आज्ञा होने की देर है वह मौर्य्य राज्य में दाखिल हो जायेंगी"—

पर्वतक सीधे बैठ गए। बोले—"फिर ?"

छाया ने गंभीर स्वर में कहा—"मैं यह तो बताने आई हूँ कि यदि ऐसा हुआ तो आपकी सेनाएं छाया के शरीर को रौंद कर आगे बढ़ सकेंगी—आप का रथ मौर्य्य राज्य में दाखिल होगा—लेकिन अपनी बेटी की लाश पर से होकर—!"

इसी वक्त कुमार मलयकेतु भी जल्दी से भीतर आये आते ही सिर उठा कर बोले—"और इस बेटे की लाश पर से होकर भी—! चन्द्रगुप्त ने यूनानियों को भारत से निकालकर देश पर जो अहसान किया है—उसके होते हुए उनके राज्य पर हमला करना देश से शत्रुता करना और यूनानियों की सहायता करना होगा !"

पर्वतक जोश में नहीं आये। केवल थोड़ा-सा मुसकराये और बोले—"युवराज साधु बनने की तय्यारी कर रहे हो—विश्व-प्रेम का धर्म चलाना चाहते हो ?"

युवराज ने उसी जोशीले स्वर में कहा—"अभी तो यह ठीक नहीं, लेकिन हो सकता है कि एक दिन ठीक भी हो जाय। इस राजकाज, लोभनीति, और भोगविलास से घृणा है ही देश में पैदा होकर—एक ही भूमि से अन्न सीमाओं और अधिकारों के लिए भला

काटते फिरें ?"

पर्वतकने फिर मुसकराकर कहा—"समझा"—और सामन्तों की ओर देख कर कहा—"आप जाइये—और नर्तकी की ओर देख कर—"तुम भी !"

मलयकेतु ने इधर-उधर लुढ़के हुए पात्रों की ओर इशारा करते हुए कहा—"इस मदिरा और नृत्य को लेकर ही क्या आप उस विक्रमी चंद्रगुप्त का मुक़ाबला करेंगे जिसने कुछ भी न होते हुए सिकन्दर जैसे विश्वविजयी के दांत खट्टे कर दिये ?"

पर्वतक आहिस्ता से बोले—"हुँ"

छाया ने कहा—"और आपको यह भी पता है कि हमारी प्रजा उनको कितना चाहती है, उन से कितना प्यार करती है ? उन से युद्ध छिड़ते ही हमारे राज्य में विप्लव जाग उठेगा।"

पर्वतक अभी तक मुसकरा रहे थे। मुसकराते रहे।

मलयकेतु ने कहा—"आप कोई उत्तर क्यों नहीं देते ?"

पर्वतक हँसते हुए बोले—"इसलिए कि तुम दोनों बेवकूफ हो—तुम युवराज—और तुम राजकुमारी—तुम मेरी सभा में आकर ऐसी बातें करते हो जिनसे मेरे सामन्तों को विश्वास हो सकता है कि तुम्हें राजनीति का कोई भी ज्ञान नहीं !"

छाया ने आश्चर्य से कहा—"मतलब ?"

पर्वतक बोले,—"मतलब यह है कि—कि—चन्द्रगुप्त की आज देश में पूजा हो रही है—यह मैं मानता हूँ। मेरे राज्य में भी अधिकांश लोग उसे भारत का रक्षक समझते हैं—यह भी जानता हूँ—और यह भी कि मेरी प्रजा के अतिरिक्त राजकुमारी छाया भी उसे प्रेम करती है। लेकिन एक बात जो तुम दोनों नहीं जानते वह मैं जानता हूँ कि महाराज पर्वतेश्वर भी मौर्य्य चन्द्रगुप्त को अपने बेटे की तरह प्रेम करते हैं !"

छाया ने और भी आश्चर्य के साथ कहा—"पिता जी—तब यह—यह हमला क्यों ?"

पर्वतक ने अट्टहास करते हुए बोले—"यही तो गलती है—चन्द्रगुप्त पर हमला नहीं होगा। मुझे घृणा है उस ब्राह्मण चाणक्य से। मेरे ही राज्य का एक साधारण-सा शिक्षक मुझे लिखता है कि राज्य छोड़ दो—मैं इस बात को बर्दाश्त नहीं कर सकता। मैं उसका सिर कुचल दूंगा। लेकिन चन्द्रगुप्त ने स्वयं ही उसे अपमानित करके निकाल दिया है। अब मौर्य्य सम्राट के साथ मेरा कोई झगड़ा नहीं रहा। अब वह मेरा मित्र है। मैंने आज ही उसे एक पत्र लिखा है कि मैं और वह दोनों मिलकर पाटलीपुत्र पर हमला कर सकते हैं। निश्चित रूप से हमारी विजय होगी। तब आधा राज्य उसका होगा—आधा मेरा—!"

छाया ने आह्लादभरे आश्चर्य से मलयकेतु की ओर देखकर कहा—"भय्या !"

मलयकेतु ने हाथ जोड़ कर कहा—"हम दोनों क्षमा माँगते हैं—पिता जी !—लेकिन एक बात है....."

छाया ने जल्दी से कहा—"कहो भय्या !—जब पिता [illegible]हें प्रेम करते हैं तो भय की कोई बात नहीं—पिता जी ! जिन [illegible] आपने मित्रता का पत्र भेजा है—वह इस समय इसी महल [illegible] हैं !!"

पर्वतक चौंककर बोले—"कौन ? चन्द्रगुप्त ! अरे उसे वहां [illegible]यों खड़ा कर रखा है—यहां लाओ उसे—या चलो मैं ही [illegible]लता हूँ!"

और बाहर उस स्फटिक तालाब के किनारे जाकर एक वृक्ष [illegible]के सहारे खड़े नगरसेठ बने चन्द्रगुप्त को पुकार कर उन्होंने [illegible]हा—

फाटते फिरें ?"

पर्वतक ने फिर मुसकराकर कहा—"समझा"—और सामन्तों की ओर देख कर कहा—"आप जाइये—और नर्तकी की ओर देख कर—"तुम भी !"

मलयकेतु ने इधर-उधर लुढ़के हुए पात्रों की ओर इशारा करते हुए कहा—"इस मदिरा और नृत्य को लेकर ही क्या आप उस विक्रमी चंद्रगुप्त का मुकाबला करेंगे जिसने कुछ भी न होते हुए सिकन्दर जैसे विश्वविजयी के दांत खट्टे कर दिये ?"

पर्वतक आहिस्ता से बोले—"हुँ"

छाया ने कहा—"और आपको यह भी पता है कि हमारी प्रजा उनको कितना चाहती है, उन से कितना प्यार करती है ? उन से युद्ध छिड़ते ही हमारे राज्य में विप्लव जाग उठेगा।"

पर्वतक अभी तक मुसकरा रहे थे। मुसकराते रहे।

मलयकेतु ने कहा—"आप कोई उत्तर क्यों नहीं देते ?"

पर्वतक हँसते हुए बोले—"इसलिए कि तुम दोनों बेवकूफ हो—तुम युवराज—और तुम राजकुमारी—तुम मेरी सभा में आकर ऐसी बातें करते हो जिससे मेरे सामन्तों को विश्वास हो सकता है कि तुम्हें राजनीति का कोई भी ज्ञान नहीं !"

छाया ने आश्चर्य से कहा—"मतलब ?"

पर्वतक बोले,—"मतलब यह है कि—कि—चन्द्रगुप्त की आज देश में पूजा हो रही है—यह मैं मानता हूँ। मेरे राज्य में भी अधिकांश लोग उसे भारत का रक्षक समझते हैं—यह भी जानता हूँ—और यह भी कि मेरी प्रजा के अतिरिक्त राजकुमारी छाया भी उसे प्रेम करती है। लेकिन एक बात जो तुम दोनों नहीं जानते वह मैं जानता हूँ कि महाराज पर्वतेश्वर भी मौर्य्य चन्द्रगुप्त को अपने बेटे की तरह प्रेम करते हैं !"

पर्वतक ने चौंककर कहा—"विष्णु—विष्णु कौन ?"

चन्द्रगुप्त बोले—"मेरा एक सेवक !"

पर्वतक ने लम्बा सांस लेकर कहा—"और मैं समझा था विष्णुगुप्त चाणक्य—चन्द्रगुप्त ! उस कुटिल ब्राह्मण को मंत्रीपद से हटाकर और उसका अपमान करके तुम ने मुझे जो सुख पहुँचाया उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। अपने गुप्तचरों से यह बात सुनते ही मैंने फैसला किया—चन्द्रगुप्त मेरा मित्र बनेगा !"

चन्द्रगुप्त ने जैसे सहज स्वभाव से कहा—"ओह, वह बात—विष्णु !"

सेवक चाणक्य ने और भी निकट आकर कहा—"मैं बधाई देता हूँ महाराज—इस मित्रता के लिए। पर्वतेश्वर और मौर्य दोनों मिलकर—भारत तो क्या संसार को विजय कर सकते हैं। आधे-आधे भारत की बात मैंने सुनी है। इस से सुंदर प्रबन्ध और क्या हो सकता है !"

पर्वतक सेवक विष्णु की ओर देख कर बोले—"तुम्हारा सेवक तो बहुत समझदार है चन्द्रगुप्त !" और फिर विष्णु को संबोधित करते हुए कहा—"लेकिन सेवकों को स्वामियों के इतना निकट आकर खड़ा नहीं होना चाहिए, विष्णु !"

विष्णु ने थोड़े पीछे हटकर हाथ जोड़ते हुए कहा—"ग़लती हुई। क्षमा कीजिए महाराज ! मैं अपने स्वामी को बधाई देने का लोभ नहीं रोक सका। स्वामी ! अब तो आप रात भर महल में ही ठहरेंगे। घोड़े अश्वालय में ले जाऊँ !"

चंद्रगुप्त आहिस्ता से बोले—"हां, इसीलिए बुला... मैंने। हम कल चलेंगे वापिस !"

पर्वतक बोले—"केवल एक रात तो बहुत थोड़ा है—कुछ दिन तो ठहरो ?"

"चन्द्रगुप्त !"

चन्द्रगुप्त ने चौंक कर पीछे देखा ! पर्वतक के पीछे मलयकेतु और छाया खड़े थे।

पर्वतक ने मुसकराते हुए आगे बढ़ कर कहा—"भागने की कोशिश मत करो !"

चन्द्रगुप्त ने आगे बढ़ कर कहा—"आप जानते हैं मौर्य्य लोग भागना नहीं जानते। आप यह भी जानते हैं—मैं यहां क्यों आया हूँ !"

पर्वतक ने छाया की ओर देख कर मुसकराते हुए कहा—"मैं जानता हूं !"

छाया ने लज्जा से सिर झुका दिया।

पर्वतक जल्दी से आगे बढ़कर चन्द्रगुप्त को छाती के साथ लगा कर बोले—"मेरे मित्र—मेरे मित्र—मैं तुम्हें बधाई देता हूं। यूनानियों को इस देश से निकाल देने के लिए और एक प्रबल साम्राज्य बनाने के लिए !"

चन्द्रगुप्त ने आहिस्ता से कहा—"मैं धन्यवाद करता हूं !"

पर्वतक ने उनके दोनों कंधों पर हाथ रखकर उन्हें थपथपाते हुए कहा—"अब हम दोनों मिलकर मगध पर हमला करेंगे—यह विशाल भारत देश—आधा तुम्हारा होगा, आधा मेरा।"

और वह उनके गले में बांह डालकर तालाब के किनारे किनारे उन्हें उस ओर ले चले जिधर छाया और मलयकेतु खड़े थे।

चन्द्रगुप्त ने पर्वतक की बात का कोई जवाब नहीं दिया, पलट कर कहा—"विष्णु !"

वृक्ष के पीछे भेष बदलकर छिपे हुए चाणक्य सेवक विष्णु के रूप में आगे बढ़े। हाथ जोड़कर बोले—"हां महाराज !"

कौन है ?"

"चंद्रगुप्त असमंजस में पड़ गए। घबराहट को दबाते हुए बोले—"पागल न बनो छाया !"

छाया ने हठ के साथ कहा—"मैं पागल नहीं हूँ। बोलिए—कौन है यह आदमी ? मेरी सौगंध ! आपने आज तक मुझसे कोई बात नहीं छिपाई। आजतक कभी झूठ नहीं बोला। तब आज यह बात क्यों छिपा रहे हैं !"

उसकी आंखों में आंसू देखकर चंद्रगुप्त का दिल रो उठा। उन आँसुओं को अपने हाथ से पोंछते हुए वह बोले—छिपाऊँगा नहीं छाया, जिससे आज तक कुछ नहीं छिपाया—जिससे आज तक कोई असत्य बात नहीं कही, उससे आज भी कुछ छिपाऊँगा नहीं—भले ही मेरा सर्वनाश हो जाय, भले ही मेरे गुरुदेव की नीति असफल हो जाय, जिस आदमी ने तुम्हारी ओर ध्यान से देखा वह स्वयं मेरे गुरुदेव हैं। महात्मा चाणक्य !"

छाया ने चौंककर एक कदम पीछे हटकर कहा—"चाणक्य ! तो वही अब भी आपके प्रधानमन्त्री हैं !"

चंद्रगुप्त ने धीमे से कहा—"वह मेरे गुरु हैं छाया—देश के सच्चे रक्षक वही हैं। और उनसे हमारा निश्चय ही कोई अनिष्ट नहीं हो सकता। उनसे अधिक चंद्रगुप्त का इष्ट चाहने वाला तो शायद और कोई नहीं !"

छाया ने दुखित स्वर में चिल्ला कर कहा—"आर्य !"

चंद्रगुप्त उसे दोनों भुजाओं में लेकर बोले—"ओह, भूल गया। तुम हो—अब तो खुश हुई। अब तो कोई भय नहीं। अब हंसो !"

छाया ने एक बार उनकी ओर देखा। और अपने आपको छुड़ाकर चंचलता से दूर भाग गई। दूर जाकर अट्टहास करती

छाया ने चंद्रगुप्त की ओर देखा कि क्या उत्तर देते हैं। चंद्रगुप्त ने विष्णु की ओर देखा। विष्णु ने परे जाते हुए कहा—"कल तक मेरे योग्य कोई सेवा हो तो मुझे वहीं से बुलवा दीजिए!"

चंद्रगुप्त ने जैसे कुछ सोचते हुए कहा "हां, हां, बुलवाने भेजूंगा" और फिर पर्वतक की ओर देख कर बोले—"कल तक ही ठहरना होगा महाराज! मगध का राज्य विशाल है। उस पर विजय पाने के लिए काफ़ी तैय्यारी करनी होगी! मैं भी करूंगा—आप भी कीजिए—!"

पर्वतक हँसते हुए बोले—"जो तुम्हारी इच्छा—अच्छा, शाम होने लगी। छाया! इन्हें भोजन-ओजन तो कराओ बेटी! मलय! चलो हम अन्तराल में चलें!"

चंद्रगुप्त और छाया वहीं खड़े रहे। पर्वतक मलयकेतु को लेकर महल के अन्दर चले गए।

चंद्रगुप्त ने छाया के पास जाकर—पीछे से उसके कंधों पर हाथ रखकर कहा—"छाया! अब तो तुम खुश हुईं—अब तो तुम दुःखी नहीं!"

छाया ने सिर को पीछे झुकाकर उनकी ओर देखा। और फिर पलटकर कहा—"दुःख—दुःख तो नहीं है राजा—पर एक भय—ऐसा मालूम होता है, मेरा इष्ट नहीं होगा। अनिष्ट होगा।"

चंद्रगुप्त आश्चर्य से बोले—"तुम्हारा अनिष्ट! तुम्हारा अनिष्ट कौन करेगा?"

छाया ने सिर उठा कर उनकी आंखों में देखते हुए कहा—'आपका यह सेवक विष्णु—पता नहीं क्यों उसकी आंखों में मुझे भय लगा। वह घूर-घूर कर मेरी ओर देखता था—मुझे डर लगता है। सच-सच बताइये—यह आदमी

कौन है ?"

"चंद्रगुप्त असमंजस में पड़ गए। घबराहट को दबाते हुए बोले—"पागल न बनो छाया !"

छाया ने हठ के साथ कहा—"मैं पागल नहीं हूँ। बोलिए—कौन है यह आदमी ? मेरी सौगंध ! आपने आज तक मुझसे कोई बात नहीं छिपाई। आजतक कभी झूठ नहीं बोला। तब आज यह बात क्यों छिपा रहे हैं !"

उसकी आँखों में आंसू देखकर चंद्रगुप्त का दिल रो उठा। उन आँसुओं को अपने हाथ से पोंछते हुए वह बोले—छिपाऊँगा नहीं छाया, जिससे आज तक कुछ नहीं छिपाया—जिससे आज तक कोई असत्य बात नहीं कही, उससे आज भी कुछ छिपाऊँगा नहीं—भले ही मेरा सर्वनाश हो जाय, भले ही मेरे गुरुदेव की नीति असफल हो जाय, जिस आदमी ने तुम्हारी ओर ध्यान से देखा वह स्वयं मेरे गुरुदेव हैं। महात्मा चाणक्य !"

छायाने चौंककर एक कदम पीछे हटकर कहा—"चाणक्य ! तो वही अब भी आपके प्रधानमन्त्री हैं !"

चंद्रगुप्त ने धीमे से कहा—"वह मेरे गुरु हैं छाया—देश के सच्चे रक्षक वही हैं। और उनसे हमारा निश्चय ही कोई अनिष्ट नहीं हो सकता। उनसे अधिक चंद्रगुप्त का इष्ट चाहने वाला तो शायद और कोई नहीं !!"

छाया ने दुखित स्वर में चिल्ला कर कहा—"आर्य !"

चंद्रगुप्त उसे दोनों भुजाओं में लेकर बोले—"ओह, भूल गया। तुम हो—अब तो खुश हुई। अब तो कोई भय नहीं। अब हंसो !"

छाया ने एक बार उनकी ओर देखा। और अपने आपको छुड़ाकर चंचलता से दूर भाग गई। दूर जाकर

देवी है।"

चन्द्रगुप्त ने आह्लाद के साथ कहा—"गुरुदेव !"

चाणक्य आगे देखते हुए बोले—"जिओ—बेटा ! मुझे ज्वर हो रहा है, मैं अब तुम्हारा रथ न चला सकूंगा। अगले पड़ाव पर मुझे छोड़कर किसी और सारथी को लेकर तुम शीघ्रता से राजधानी में पहुँचना।"

चन्द्रगुप्त उतावले हो उठे। दुख के साथ बोले—"आपने मुझे क्या पत्थर समझ रखा है। आपको ज्वर हो, आप रोगी हों और मैं आपको छोड़कर आगे बढ़ जाऊं। छोड़िए रथ को, मैं चलाऊंगा इसे। मुझ से यह खेल बर्दाश्त नहीं होता।"

चाणक्य फिर मुसकराए, बोले—"अभी नहीं, अभी मैं रथ को चला सकता हूँ। और यह ज्वर मैंने स्वयं ही पैदा किया है। एक औषध खा ली थी। उसी से ज्वर हुआ। तुम मुझे छोड़ कर आगे बढ़ोगे तो उसके दो घड़ी बाद यह ज्वर भी समाप्त हो जायगा। मैं रोगी नहीं हूं। तुम चिंता न करो !"

चन्द्रगुप्त आश्चर्य के साथ बोले—"धन्य गुरुदेव ! हर बात में खेल—हर बात में नीति !"

चाणक्य बोले "हां सम्राट् ! हर बात में नीति ! नीति न हो तो संसार नष्ट हो जाय। अगले पड़ाव पर मुझे छोड़कर तुम आगे जाना—राजधानी में—अपनी सेना को तय्यार करना—मालवी वीर प्रसेनजित कुलूत से वापस आ गया है, उसे सेनापति बना देना. मैं बाकी प्रदेशों में जाकर राज्य को सुव्यवस्थित रखने और मगध की ओर सेना भेजने का प्रबंध करूंगा, लेकिन भेद की एक बात है।"

चन्द्रगुप्त बोले—"वह क्या गुरुदेव ?"

चाणक्य ने क्षीण स्वर में कहा—(शायद उन्हें ज्वर तेज हो रहा था)—"हमारी सेना का सबसे अच्छा भाग मगध की

और लड़ने के लिए नहीं जायगा।"

चन्द्रगुप्त हैरान होकर बोले—"तब हम जीतेंगे कैसे ?"

चाणक्य क्षीणतर स्वर में बोले—"चाणक्य की कूटनीति से और महाराज पर्वतक की सेना के सहारे—हमारी अपनी सेना भारतीय सीमा की रक्षा करेगी। यूनानियों का भय अब भी दूर नहीं हुआ। और फिर यह रास पकड़ लो—मेरे हाथ शिथिल हो रहे हैं—पर्वतक की सेना होगी मगध में। हमारी सेना होगी पर्वतक की सीमा पर—पर्वतक अपने राज्य में वापिस नहीं आ सकेगा।"

चन्द्रगुप्त चिल्लाकर बोले—"महाराज!"

चाणक्य रथ में पीछे हट कर एक ओर लेट गए—और क्षीणतम स्वर में बोले—"मुझे अगले पड़ाव पर उतार कर आगे बढ़ जाना!—अब मैं पाटलीपुत्र के बाहर मिलूंगा—मगध की राजधानी—पाटलीपुत्र.........!"

: ११ :

मगध की राजधानी पाटलीपुत्र—शोण और गंगा के संगम पर। एक ओर शोण नदी बहती है। दूसरी ओर हरहर करती हुई गङ्गा। तीसरी ओर जाकर दोनों मिल गई हैं जहाँ सुंदर और विस्तृत घाट बने हैं। चौथी ओर खाई है जिसमें गङ्गा से लाया गया पानी लहरें मारता है। नगरके चारोंओर पहले लकड़ी की, फिर पत्थर की ऊँची दीवार बनी है। पत्थर की दीवार में ६४ द्वार हैं। और द्वारों के साथ-साथ ५७० बुर्ज—जिन में तेज तीरों वाले सैनिक हर समय बाहर से आने वाले लोगों पर निगाह रखते हैं। नगर के अंदर सुंदर और सीधे राजपथ हैं सजी हुई दुकानें हैं। बाजारों में रथ चलते हैं। विशालकाय घोड़ों पर मागधी लोग बाजारों में चीजें खरीदने आते हैं। ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें आसमान को चूमती हैं। गङ्गा के कूल पर बना

महाराज नन्द का राजमहल है। महल के द्वार पर खड़ी काले रङ्ग की एक हबशिन दासी ने नङ्गी तलवार उठा कर कहा—"सावधान—राजाधिराज मगधेश्वर महाराज महानंद की सवारी आती है।" साथ ही राजमहल से पहले सैनिक निकले-फिर हाथों में नङ्गी तलवार लिए हुए सुंदर गौरांगना दासियां—तब महाराज नन्द का विशाल रथ—जिस में वह आराम से लेटे हुए थे। अर्धनग्न दासियां उन पर चंवर डुला रही थीं—पीछे घोड़ों पर उनके नौ बेटे थे।

महानन्द के रथ पर खड़ी एक विशालकाय हबशिन दासी ने चिल्लाकर कहा—"राजाधिराज महाराज महानन्द की जय !"

राजपथ के दोनों ओर खड़े ब्राह्मणों, साधुओं, भिखारियों, सरदारों और नगरवासियों की भीड़ भी चिल्ला उठी—"महानन्द की जय !"

महानन्द एक क्षीण मुसकान के साथ अपने दाएं-बाएं देखने लगे।

उन के नौ बेटों के आगे-आगे चलती हुई क्रीत दासियों की सेना ने पुकार कर कहा—"नवनंदों की जय।"

और घोड़ों पर चढ़े हुए वह सब-के-सब स्मितपूर्ण मुख से राजपथ के दोनों ओर खड़े लोगों का अभिवादन स्वीकार करने लगे।

इसी समय एक भिखारी महाराज नन्द के रथ के सामने खड़ा हो गया। एक हाथ से उसने एक बालिका को पकड़ रखा था। बालिका यौवन के प्रासाद में पग रख रही थी। उसके सुंदर केश पूरे और बिखरे हुए थे—फिर भी उन में आकर्षण था। उस की बड़ी-बड़ी आंखें डरी हुई हिरनी की तरह चारों ओर देख रही थीं। भिखारी ने अपना दूसरा हाथ उठा कर कहा

—"दुहाई—महाराज के न्याय की दुहाई !"

महानन्द लेटे-ही-लेटे बोले—"कौन है यह ? क्या चाहता है ?"

भिखारी ने राजपथ की धूल को आंखों के साथ लगाकर कहा—"न्यायमूर्ति—मैं दारुक भिखारी हूं। यह मेरी कन्या है—सुनेत्रा !—हम दोनों इस विशाल नगरी में गा-गा कर भीख मांगते हैं। लेकिन आपके कुछ सैनिक मुझ से मेरी कन्या को छीन लेना चाहते हैं। यह कन्या ही मुझ बूढ़े का सहारा है—इसके बिना तो मैं जीता ही मर जाऊँगा !"

महानन्द ने सुनेत्रा की ओर देखा। और एक कुटिल मुसकान के साथ कहा—"कन्या सुंदरी है। इसे देख कर सैनिकों की राल टपक पड़े तो इस में आश्चर्य क्या है ?"

भिखारी ने फिर कहा—"मैं सारा भारत घूमा हूँ अन्नदाता ! मैं आपकी शरण आया हूँ ! मुझे अभयदान मिले !"

महानन्द ने गर्व के साथ कहा—"जाओ, हमने अभय-दान दिया। आज से तुम्हें या तुम्हारी कन्या को कोई कुछ नहीं कहेगा !"

भिखारी ने जमीन तक झुक कर कहा—"महाराज की जय हो !"

रथ के आगे चलती हुई दासियों ने उसे एक ओर हटा दिया। रथ आगे बढ़ा। साथ ही सारा जुलूस और सारी भीड़ भी। राजपथ पर केवल वह बूढ़ा भिखारी दारुक और वह कन्या सुनेत्रा रह गए !

सुनेत्रा ने बलपूर्वक अपना हाथ बढ़ा कर कहा—"अब तो छोड़ो—मैं कहीं भागी नहीं जाती !"

दारुक ने कहा—"भाग जाने में कोई कसर है क्या ? लेकिन याद रख अब अगर उस सैनिक बंधु से तू मिली या वह तुझे

मिला तो मैं महाराज से कह कर तुम दोनों को फांसी लगवा दूंगा। महाराज ने मुझे अभयदान दिया है!"

सुनेत्रा ने आगे बढ़ते हुए कहा—"महाराज को अभी कुछ भी मालूम नहीं है। कभी समय आया तो मैं कहूँगी—मुझे किसी सैनिक से कोई भय नहीं। भय है तो बाबा से। यह शराब पीते हैं, चोरी करते हैं। मैं रोकती हूँ तो मुझे मार-मार कर हलकान कर देते हैं। मैं उन्हें कहूँगी—बंधु ही संसार में मेरे एकमात्र रक्षक हैं। उनसे अच्छा और कोई नहीं। मैं उनसे प्यार करती हूँ।"

दारुक ने आगे बढ़कर उसके बाल पकड़ लिये, बेदर्दी से उन्हें खींचता हुआ बोला—"चल-चल प्यार की बच्ची! चल शाम होने से पहले कुछ मांग खा ले। नहीं तो आज व्रत रखना होगा!"

और वह उसे घसीटता हुआ आगे ले चला।

× × ×

एक स्थान पर जहां पाटलीपुत्र के दो बड़े-बड़े बाजार एक दूसरे को काटते थे—चौक में एक छोटा-सा बाग बना था। उसी बाग की घास पर सुनेत्रा नाच रही थी और गा रही थी—

"मैं दूर देश से आई
एक मीठा गीत सुनाने
प्यारे प्यारे नाच मैं नाचूँ
गांऊ प्यारे गाने
ओ राह पर चलने वाले राही
सुन कर जाना यह गीत
प्रीत बिना जग सारा झूठा
प्रीत ही जग की रीत

रीत निराली जग के प्यारे
सुन कर जाना गीत—
क्या जाने कब अनजाने हो
समय जाय यह बीत

पास ही खड़े एक वैश्य ने कहा—"ठीक कहती है बेचारी—चन्द्रगुप्त अपनी सेना लेकर पाटलीपुत्र पर बढ़ा आ रहा है। कौन जाने क्या होगा ? कब यह समय बीत जायगा।"

उसी के पास खड़े एक कम्मार ने कहा—"क्या कहते हो सेठ ! पाटलीपुत्र पर हमला होगा ? कौन करेगा हमला ? चन्द्रगुप्त कौन है ?"

सेठ ने अपना उष्णीष संभालते हुए कहा—"चन्द्रगुप्त को नहीं जानते भाई ! मुरा दासी के पुत्र राजकुमार चन्द्रगुप्त !"

कम्मार ने कहा—"तब पाटलीपुत्र का क्या होगा ?"

सेठ ने कहा—"भगवान् ही जानता है—अभी तो यह नाच देखो—फिर जाने यह समय आए या न आए !"

और वह दोनों बाकी भीड़ के साथ मिलकर फिर नाच देखने लगे। इसी भीड़ में एक ओर सैनिक वेषधारी एक युवक खड़ा था। उसने सुनेत्रा पर कमल के फूलों का एक हार फेंक दिया। सुनेत्रा ने हँसकर उसकी ओर देखा। हाथ जोड़ दिये। उस युवक ने दोनों ओठों पर उंगलियां रखकर उन्हें चूम लिया। सुनेत्रा और उस सैनिक को सब से पहले देखा—उस बूढ़े भिखारी दारुक ने। देखते ही चिल्लाकर बोला—"बंधु ! बदमाश ! तू फिर आ गया। ठहर अबके मैं तुझे महाराज के पास ही लेकर चलूंगा—"

और वह भाग कर बंधु को पकड़ने के लिये आगे बढ़ा। भीड़ में खलबली मच गई। बंधु थोड़ा-थोड़ा परे हटता था—बूढ़ा दारुक उसे पकड़ने के लिये पीछा करते-करते हांप गया। लोहार

चाणक्य ने कहा—"दीपक को घास के इस ढेर पर फेंक दो—और यहां, इस वृक्ष के पीछे आजाओ—गंगा के दूसरे तट पर खड़ा कोई आदमी तुम्हें देख न ले।"

चंद्रगुप्त ने ऐसा ही किया। देखते-ही-देखते सूखे घास का वह ढेर जल उठा। नदी, नदी तट और जंगल में रोशनी फैल गई।

वृक्ष के पीछे खड़े चंद्रगुप्त ने पूछा—"आप क्या किसी को कोई संकेत कर रहे हैं?"

चाणक्य ने जलती हुई आंखों से आग के उस ढेर को देखते हुए कहा—"हां, सामने पाटलीपुत्र में महानंद के राजमहल में मेरा शिष्य जीवसिद्धि रसोइया बन कर रहता है। इस आगको देखते ही वह महानन्द और उसके बेटों के खाने में एक तीव्र विष मिला देगा। सुबह तक इस संसार में महानन्द और उसके बेटे नहीं होंगे—!"

चंद्रगुप्त ने शिथिल होते हुए एक क्षीणस्वर में कहा—"गुरुदेव!"—और ऐसे मालूम हुआ जैसे वह गिर पड़ेंगे। चाणक्य ने उन्हें जल्दी से संभाल कर अपनी छाती के साथ लगा लिया। उनके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"बेटा! तुम मनुष्य नहीं हो, तुम राजा हो—आओ, कुटिया में चलें!" और पुकार कर उन्होंने कहा—"पालक!"

: १२ :

चाणक्य की नीति सफल हुई। महानन्द और उसके बेटों के मरते ही पाटलीपुत्र में भगदड़ मच गई। लोग जगह-जगह इकट्ठा होने लगे, बातें करने लगे। कितने ही लोग अव्यवस्थित भीड़ों की सूरत में इधर-से-उधर और उधर-से-इधर घूमने लगे। कई स्थानों पर यह भीड़ें चिल्लातीं—"महाराज चंद्रगुप्त की जय!"—"द्वार खोल दो—चंद्रगुप्त को आने दो! कुछ सैनिक

घोड़े लेकर इन भीड़ों की ओर दौड़ते—भीड़ तितर-बितर हो जाती। फिर किसी और बाजार में—किसी और राजपथ पर कोई और भीड़ चिल्ला उठती—"चंद्रगुप्त की जय!"—उधर भी घुड़सवार सैनिक दौड़ते।

एक भीड़ की अगुआई कर रही थी सुनेत्रा—उसके साथ था बूढ़ा भिखारी दारुक। सुनेत्रा नाच-नाचकर गा रही थी। और गा गाकर आगे बढ़ रही थी—

"जय चन्द्रगुप्त की जय—
भारत के रक्षक की जय—
खोल दो द्वार—
रक्षक को भीतर आने दो—"

इतने में घुड़सवार सैनिकों की एक टुकड़ी दौड़ती हुई उधर आई। भीड़ के कुछ लोग इधर-उधर हटने लगे। सुनेत्रा ने चिल्लाकर कहा—"खड़े रहो कायरो, डरते क्यों हो!"

और तब सैनिकों के सरदार की ओर देखकर उसने कहा—"बंधु!"

बंधु जल्दी के साथ घोड़े से उतरा। सुनेत्रा को उसने बाहु-पाश में ले लिया। बूढ़े दारुक ने इस वक्त कुछ नहीं कहा। उसे अभयदान देनेवाले महाराज महानंद मर चुके थे!

सुनेत्रा ने कहा—"बंधु! तुम क्या चंद्रगुप्त को नहीं चाहते जिसने भारत की रक्षा की—जो हमारा एकमात्र सहारा है?"

बंधु ने कहा—"मैं केवल एक बात जानता हूँ—जिसे तुम चाहती हो, उसे मैं भी चाहूँगा!" और तब उसने सैनिकों की ओर देखकर कहा—"महानंद का अत्याचार खत्म हुआ। घोड़ों से नीचे उतर आओ, पुकार कर कहो—"चन्द्रगुप्त की जय!"

सैनिक अपने घोड़ों पर से ही बोले—"चन्द्रगुप्त की जय!"

और सुनेत्रा की अगुआई में सैनिकों और नगरनिवासियों

धी यह भीड़ आगे बढ़ने लगी !

× × ×

चाणक्य की कुटिया में जीवसिद्धि घुटने टेके बैठा था। चाणक्य बाहर से स्नान करके आये। गीले अंगोछे को एक ओर फेंकते हुए बोले--"समाचार जीवसिद्धि--समाचार !"

जीवसिद्धि ने चौंककर कहा—"गुरुदेव की जय हो !"—और खड़ा होकर बोला—"महानंद और उसके बेटों का दाहकर्म कर दिया गया है। महल में कुहराम मचा है।"

चाणक्य अपने आसन पर बैठते हुए बोले—"आगे—आगे जीवसिद्धि !"

जीवसिद्धि ने कहा—'पाटलीपुत्र में नागरिकों और सैनिकों ने विद्रोह कर दिया है। वह महामंत्री राक्षस को मजबूर कर रहे हैं कि नगर के द्वार खोल दिए जायं—!"

चाणक्य आगे झुक कर बोले—"तब—तब क्या हुआ !"

जीवसिद्धि ने कहा—"हमारी सेना पाटलीपुत्र के उत्तरी द्वार पर आ पहुँची है। छावनी डाल दी गई है। सम्राट चन्द्रगुप्त और महाराज पर्वतक आक्रमण की तैयारियां कर रहे हैं !"

चाणक्य बोले—"यह सब कुछ जानता हूं आगे ?"

जीवसिद्धि ने कहा--"महानंद के मंत्री राक्षस ने नगर--निवासियों और सैनिकों की इच्छा देखते हुए नगर का द्वार खोल देने का फैसला किया है !"

चाणक्य चौंक कर बोले—"मंत्री ने यह फैसला किया ! इसमें कुछ भेद है अवश्य !

जीवसिद्धि ने कहा—"हाँ, महाराज ! मंत्री राक्षस ने पर्वतक के साथ षड्यन्त्र किया है। उसे लोभ दिया है कि उसे मगध का राजा बनाया जायगा—और—और—!"

चाणक्य उठ कर खड़े हो गए। बोले—"और—और

क्या ?"

जीवसिद्धि ने कहा—"और—और मंत्री राक्षस ने फैसला किया है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त का अंत करने के लिए आज रात उनके पास नगर की ओर से एक सुन्दरी कन्या भेजी जायगी—यह कन्या विषकन्या होगी—इसे छूते ही सम्राट् का अंत हो जायगा।"

चाणक्य तेज़ी के साथ अपनी कुटिया में चलने लगे—दोनों हाथ पीछे। आँखें भूमि को देखती हुई। एकाएक वह खड़े हुए—बोले—"जीव। तुम जाओ—चन्द्रगुप्त को कहो—छावनी के मध्य में एक विशाल विलासागार बनवाये—रात के समय जब वह कन्या आये तो उसे लेकर तुम स्वयं उस विलासागार में छोड़ आना। उसी समय चन्द्रगुप्त को मेरे पास भेज देना। और पर्वतक को चुपके से जाकर कहना—मगध के मंत्री राक्षस ने आपके लिए एक नर्तकी भेजी है!"

जीवसिद्धि ने चौंककर कहा—"पर्वतक के लिये! धन्य गुरुदेव!"

चाणक्य बोले—"और सुनो—विष-कन्या सांपों के बिना नहीं रह सकती। तुम स्वयं ही विलासागार में एक संदूक रखवा देना और संदूक में बहुत से सांप—! अब तुम जाओ-विलासागार जल्दी ही बनना चाहिए!"

जीवसिद्धि कुटिया के बाहर जाता हुआ बोला-"ऐसा ही होगा, गुरुदेव!"

और शाम के वक्त पाटलीपुत्र के द्वार खुल गए। बहुत-सी भेंट और छल-छल करती हुई एक नर्तकी को लेकर एक ब्राह्मण बाहर आया—द्वार पर ही उसे जीवसिद्धि मिला।

ब्राह्मण ने कहा—"यह महाराज चन्द्रगुप्त के लिए है—अनाथ पाटलीपुत्र उनका स्वागत करता है। मंत्री रा— ने

पालक बाहर गया। फिर भीतर आकर बोला—"सम्राट् चंद्रगुप्त, कुमार मलयकेतु, कुमारी छाया, सेनापति प्रसेनजित और पाटलीपुत्र के गण्यमान्य लोग रथों पर बैठे इधर आ रहे हैं।"

अभी वह बात कर ही रहा था, कि बाहर से कितने ही कण्ठों ने पुकार कर कहा—"महात्मा चाणक्य की जय !"

चाणक्य शीघ्रता से उठे। बोले—"पालक ! मैं ही बाहर जाऊंगा। चंद्रगुप्त अब भारत का सम्राट् है। मैं ही आगे जाकर उसे मिलूंगा। तुम मेरी इन पुस्तकों और पत्रों को संभाल कर संदूक में बंद कर दो। राजमहल में जाने से पहले इन्हें मेरी नई कुटिया में पहुँचा देना होगा !"

और वह शीघ्रता से अपनी चादर ओढ़कर बाहर चले गए।

बाहर रथ ही रथ खड़े थे। सब से आगे थे चन्द्रगुप्त चाणक्य को देखते ही वह रथ पर से उतरे। दौड़कर चाणक्य के पास आये और उनके चरणों पर झुक गए।

कितने ही लोगों ने चिल्लाकर कहा—सम्राट् चंद्रगुप्त की जय—महामंत्री चाणक्य की जय।"

चाणक्य ने चंद्रगुप्त के सिर पर हाथ रखते हुए कहा—भारत-सम्राट् चिरजीवी हों—सर्वविजयी हों !

चंद्रगुप्त ने अपने रथ से राजमुकुट उठाकर कहा—"यह मुकुट मेरा नहीं है प्रभु ! यह आपका है !" और उन्होंने मुकुट को चाणक्य के चरणों में रख दिया।

चाणक्य ने मुकुट उठाकर चंद्रगुप्त के सिर पर रखा। बोले—"मैं ब्राह्मण हूं सम्राट्—मुझे राजमुकुट की अभिलाषा नहीं है—मैं ही इसे तुम्हारे शीश पर रखता हूँ।

चंद्रगुप्त के साथ आये लोग चिल्ला उठे—"सम्राट् चंद्रगुप्त

की जय।"

चंद्रगुप्त ने सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर बोले—"इस विशाल साम्राज्य के प्रधानमंत्री से मैं प्रार्थना करता हूं कि वह पाटलीपुत्र के अंदर अपने महल में चलें।"

चाणक्य मुस्कराए। बोले—"सम्राट्! तुम्हारा प्रधान मंत्री हूँ मैं जरूर—पाटलीपुत्र में भी चलूंगा—लेकिन मेरा स्थान महलोंमें नहीं—अपनी कुटिया के अंदर है। पाटलीपुत्र में मेरी कुटिया बन गई है।"

चंद्रगुप्त आश्चर्य्य से बोले—"बांस और फूसकी वह कुटिया जो गंगा के किनारे बनाई गई है काम्पिल्य से काश्मीर और ताम्रलिप्त से पारस तक फैले हुए साम्राज्य के प्रधानमंत्री क्या उस कुटिया में रहेंगे?"

चाणक्य ने कहा—"हाँ, सम्राट्! मैं ब्राह्मण हूँ, मेरा यश मेरी बुद्धि और मेरी देशसेवा में है—धन, दौलत और महलों म नहीं—! ऐश्वर्य और विलास राजाओं को शोभा देते हैं—मंत्रियोंको नहीं!—चलो—हम पाटलीपुत्र में चलें—!"

चंद्रगुप्त हाथ जोड़कर उन्हें अपने रथके पास ले आए। सहारा देकर उन्हें रथ में बिठाया। और सारथी को हटा कर स्वयं ही रथ चलाने लगे।

बाकी लोग भी रथों में बैठे। सब ने चिल्लाकर कहा—"प्रधानमंत्री चाणक्य की जय!"

रथ आगे बढ़े। चाणक्य धीमे से बोले—"चंद्रगुप्त! एक समाचार है!"

चंद्रगुप्त ने कहा—"कहिए गुरुदेव!"

चाणक्य गंभीरता से बोले—"सैल्यूकस ने हमारे देश पर हमला कर दिया है!"

चंद्रगुप्त चौंक कर बोले—"गुरुदेव!—इतनी बड़ी बात

इसी समय सम्राट् चंद्रगुप्त ने पहाड़ी पर खड़े होकर शंख बजाया—और अपनी नंगी तलवार को हिलाते हुए ललकार-कर कहा—"आगे बढ़ो भारत के वीरो—शत्रु की हड्डियां चूरचूर कर दो !"

और भारतीय घुड़सवार सेना आंधी के वेग से पहाड़ी के नीचे उतरी—घमसान का रण मच उठा—सेनापति प्रसेनजित और सम्राट् चंद्रगुप्त श्वेत हाथियों पर चढ़े युद्ध का संचालन कर रहे थे।

रथों से रथ भिड़ गए। घुड़सवारों से घुड़सवार—हाथियों से हाथी—पदातियों से पदाती। सिंधु तट की धूलि आकाश में उड़ी, जो नीचे रही वह रक्त से लाल होगई—स्वयं सिंधु का पानी रक्तरंजित हो उठा।

दोपहर तक यूनानी सेना ने अपना सारा जोर लगा दिया। लेकिन भारतीय सेना को वह एक कदम भी पीछे नहीं हटा सकी। गुप्त किलों में बैठे भारतीय सैनिक लगातार पैने तीरों की वर्षा कर रहे थे।

दोपहर के समय सैल्यूकस ने पुकारकर एक सेना-नायक को कहा—"मैगेस्थनीज़ !"

मैगेस्थनीज ने यूनानी ढंग से सलाम करके कहा—"शहंशाह !"

सैल्यूकस ने कहा—"मैगेस्थनीज ! हम जाल में फंस गए हैं—पीछे हटे बिना चारा नहीं—और पीछे सिंधु है !"

मैगेस्थनीज़ ने कहा—"हाँ, शहंशाह ! अब तो यही हो सकता है कि जितने सैनिक बच सकें—उन्हें बचाया जाए—हमारे पास कुछ नावें हैं। उन पर बिठा-बिठाकर सैनिकों को वापस भेजिए—बाकी सेना भारतीयों का मुकाबला करती रहेगी—!"

सैल्यूकस ने कहा—"यही ठीक है—आज्ञा दो—ऐसा ही हो—!"

थोड़ी ही देर के बाद कितने ही यूनानी सैनिक नावों में बैठकर सिंधु के उस पार जाने लगे।

चन्द्रगुप्त ने प्रसेनजित के पास अपना हाथी ले जाकर कहा—"यह बुरा हुआ—यूनानी सैनिक सिंधु को पार करके परली ओर भागने का यत्न कर रहे हैं। अगर वे इसमें सफल हो गए तो यूनानी सेना की पराजय नहीं होगी—उन्हें रोकना चाहिए!"

प्रसेनजित ने पुकारकर कहा—"रोकने का कोई साधन नहीं सम्राट! यूनानी सेना हमारा मार्ग रोके खड़ी है। वह पागलों की तरह लड़ रही है।"

चन्द्रगुप्त निराश हो गए। एक बार धीमे से उन्होंने कहा—"अगर गुरुदेव यहां होते!"

इसी समय प्रसेनजित ने पुकार कर कहा—"देखिए महाराज! भारत की पताका फहराती हुई कितनी ही नौकाएं पता नहीं कहां से सिंधु में आ गई हैं। उसमें बैठे हुए लोग यूनानियों पर तीरों की बौछार कर रहे हैं।"

चन्द्रगुप्त ने चिल्लाकर कहा—"लेकिन यह तो शिखा सूत्र धारी ब्राह्मण हैं। प्रसेनजित, वह देखो सब से अगली नौका में स्वयं महात्मा चाणक्य—!"

प्रसेनजित के साथ ही साथ भारतीय सैनिकों ने चिल्लाकर कहा—"महात्मा चाणक्य की जय—भारत की जय!"

इसी समय एक अतीव सुन्दर लड़की यूनानी शहंशाह सैल्यूकस के खेमे से बाहर निकली। घोड़े पर चढ़ी और सैल्यूकस के पास पहुंच कर बोली—"बब्बा!"

सैल्यूकस ने आश्चर्य के साथ कहा—"हेलेन! तुम यहां—"

मुकाबले में—हट जाओ, आगे से—कोई और लग जाएगा।"

हेलेन ने आगे बढ़कर कहा—"इसीलिए तो आई हूँ। यह व्यर्थ की हत्या मुझ से देखी नहीं जाती। आप जानते हैं—यूनानी सेना के बच निकलने की अब कोई आशा नहीं है। हम आगे पीछे, दाएं, बाएं सब तरफ से घिर गये हैं! जीतने की कोई आशा नहीं, बचने की कोई आशा नहीं।"

सैल्यूकस ने ग्लानि के साथ सिर झुकाकर कहा—"कोई आशा नहीं हेलेन!"

हेलेन ने कहा—"तो यूनानी खून का यह फिजूल बहना बंद कराइये। सुलह का झण्डा उठाइये।"

सैल्यूकस ने ग्लानिपूर्ण स्वर में कहा—"लेकिन मैं यूनानी हूँ—महान् सिकन्दर का जानशीन!"

हेलेन ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—"सिपाही का काम लड़ना है। हार और जीत जूपीटर के बस में है—हम काफी लड़ चुके—अब सुलह का झण्डा उठाइये!"

सैल्यूकस ने क्षीण स्वर में कहा—"हेलेन!"

हेलेन ने स्वयं ही एक श्वेत झण्डा ऊपर उठाते हुए कहा—"लड़ाई बन्द हो—हम सुलह करेंगे!"

सैल्यूकस ने उसे रोका नहीं!

पास ही खड़े मैगेस्थनीज ने उस झण्डे को हेलेन के हाथ से लेकर ऊपर उठा दिया और सिर नीचे कर लिया।

: १४ :

सिंधु के तट पर वह मैदान—मैदान के पास पहाड़ियों की वह शृंखला जिसपर प्रसेनजित के गुप्त किले बने थे। अब इन किलों के द्वार खुले थे। उनपर मौर्य्य साम्राज्य के मयूरांकित झण्डे लहरा रहे थे। नीचे मैदान में निःशस्त्र यूनानी सेना अपने खेमों में पड़ी थी। उसके चारों ओर भारतीय

सेनाएं घेरा डाले खड़ी थीं।

एक गुप्त किले के द्वार पर चन्द्रगुप्त और प्रसेनजित खड़े थे। भीतर से चाणक्य अपनी चादर को कंधे पर डालते हुए बाहर आए तो चन्द्रगुप्त ने उनके पांव छू कर कहा—"गुरुदेव की जय हुई। मैं बधाई देता हूँ।"

चाणक्य ने अपने सामने मैदान की ओर देखते और मुस्कराते हुए कहा—"अभी नीति की विजय बाकी है सम्राट्। युद्ध की विजय पूर्ण विजय का केवल एक भाग है!"

चन्द्रगुप्त ने कहा—"नीति में आप से जीतने वाला संसार में अभी तक पैदा नहीं हुआ—लेकिन कल आपने अपने आप को जिस भय में डाल दिया था—उसका ध्यान आते ही अब भी मेरा हृदय कांपता है—अगर किसी यूनानी का तीर लग जाता तो—!"

चाणक्य मुस्कराए। बोले—"ओः—तुम यूनानियों पर उस नाविक हमले की बात कहते हो। वह तो मेरा कर्तव्य था। बतौर प्रधान मंत्री के नहीं, बल्कि बतौर एक भारतीय के—देश के शत्रु को कुचलना चन्द्रगुप्त क्षत्रिय का जितना कर्तव्य है—ब्राह्मण चाणक्य का भी उतना ही है।"

इसी समय एक सैनिक ने कहा—"भारत सम्राट् की जय हो—यूनानी सैल्यूकस ने अपने दूत मैगेस्थनीज को सुलह की शर्तें मालूम करने के लिए भेजा है। वहां—पहाड़ी के नीचे दूत खड़ा है!"

चाणक्य ने कुछ सोचते हुए कहा—"मैगेस्थनीज को सम्मान के साथ ऊपर भेज दो—जाओ—!" और तब चन्द्रगुप्त की ओर देख कर बोले—सम्राट्!—अब आया है चाणक्य की नीति का समय। मैगेस्थनीज के ऊपर आने से पहले पहले दो एक बातें सुन लो। सुलह का फैसला यहां नहीं पाटलीपुत्र में

होगा। मैं मैगेस्थनीज को लेकर आज ही पाटलीपुत्र चला जाऊंगा।"

प्रसेनजित ने आश्चर्य के साथ कहा—"पाटलीपुत्र में!"

चाणक्य बोले—"सम्राट् आज का दिन और रात यहीं रहेंगे। आज रात को सारी यूनानी सेना को एक विशाल भोज देना होगा। भारत के सुस्वादुतम खाने उन्हें खिलाए जाएंगे। सम्राट् स्वयं सैल्यूकस के पास बैठेंगे। उन्हें अपना मित्र बनाएंगे। हेलेन से बातें करेंगे। और फिर कल—कल यहां से पाटलीपुत्र के लिए चल देंगे!"

चन्द्रगुप्त सिर झुकाए खड़े रहे। चाणक्य ने फिर कहा—"और सम्राट् के चले जाने के बाद—तब तक—जब तक मेरी आज्ञा न पहुँचे—प्रसेनजित हमारी सेना को लेकर यहीं रहेंगे। सैल्यूकस और हेलेन के लिए तक्षशिला के राजमहल में प्रबन्ध होगा। दिन और रात उनके आमोद-प्रमोद में एक क्षण भी फ़र्क नहीं आने दिया जायगा!"

इसी समय एक भारतीय सैनिक ने आगे बढ़कर कहा—"यूनानी राजदूत मैगेस्थनीज़!"

चाणक्य ने आगे बढ़कर मैगेस्थनीज़ का हाथ थाम लिया और चंद्रगुप्त की ओर इशारा करते हुए कहा—"भारत के सम्राट्—राजाधिराज—चक्रवर्ती महान् मौर्य्याधिपति प्रजावत्सल महाराज चंद्रगुप्त!"

मैगेस्थनीज़ ने यूनानी ढंग से सलाम करके कहा—"सम्राट् की जय हो—यूनान का मैगेस्थनीज़ उनके पांवों की खाक अपने सिर पर लगाता है!"

चंद्रगुप्त गंभीर स्वर में बोले—"शहंशाह सैल्यूकस के दूत की बात सुनकर हम खुश हुए—बाकी बातें हमारे प्रधानमन्त्री—महात्मा चाणक्य करेंगे!"

मैगेस्थनीज ने ध्यान से उस आदमी की ओर देखा जो नंगे पांव, नंगे सिर—केवल एक धोती, चादर और यज्ञोपवीत पहने खड़ा था, जिसे भारत सम्राट् ने अपना महामन्त्री कहा था और जो अबतक मैगेस्थनीज का हाथ पकड़े खड़ा था। यूनानी ढंग से मैगेस्थनीज ने नमस्कार किया।

चाणक्य बोले - "मैगेस्थनीज ! तुम सुलह की शर्तें पूछने के लिए यहां आए हो -लेकिन सुलह तो हो नहीं सकती।"

मैगेस्थनीज ने चौंककर कहा—"नहीं हो सकती ?"

चाणक्य गंभीरता से बोले—"सुलह होती है जीते हुए और हारे हुए में—तुम हारे नहीं हो। तुम हमारे मेहमान हो। मैं भारत और यूनान को एक दूसरे का मित्र बनाना चाहता हूँ—और उसके लिए तुम्हारी सहायता का प्रार्थी हूँ।"

मैगेस्थनीज आश्चर्यपूर्ण मुस्कान के साथ बोला—"भारतीय लोग इतने सभ्य—इतने विशाल हृदय होते हैं—यह मैं नहीं जानता था। महामन्त्री; यूनान भारत का मित्र बनने में फख्र महसूस करेगा !"

चाणक्य गंभीरता से बोले—"लेकिन मित्रता कैसे होगी—इसका निर्णय युद्धस्थल में नहीं हो सकता—मैगेस्थनीज ! इसके लिए मैं और तुम पाटलीपुत्र चलेंगे—वहां शांति से बैठकर सोचेंगे। तब तक यूनानी सेना भारतीय सेनापति आर्य प्रसेनजित की मेहमान होगी—और शाह सैल्यूकस और उनकी बेटी कुमारी हेलेन तक्षशिला के राजमहल की !"

मैगेस्थनीज ने आह्लाद के साथ कहा—"महामन्त्री !"

चाणक्य उसी गंभीरता के साथ बोले—"आश्चर्य की कोई बात नहीं मैगेस्थनीज ! मैंने कहा न—भारत यूनान की मित्रता चाहता है। अब आप शाह सैल्यूकस के पास जाइये। उनसे मित्रता करने का पूर्ण अधिकार ले आइये और मेरे साथ पाटली-

और उसका मुंह दूसरी ओर था।

चंद्रगुप्त ने चिल्लाकर कहा—"छाया!"

छाया ने दूसरी ओर मुंह किए हुए ही कहा—"मैंने कहा न—मैं आपके साथ विवाह नहीं करूंगी। मेरी इच्छा है आप हेलेन के साथ विवाह करें।"

चंद्रगुप्त ने उसके पास जाकर, उसके मुंह को अपनी ओर करके कहा—"छाया! तुम तो रो रही हो!"

छाया ने धीमे से कहा—"दुख होता है—इसलिए—लेकिन देश का भला जिस बात में है, प्रजा का कल्याण जिस बात में है—हम वही करेंगे। मैं केवल एक स्त्री हूँ। आप केवल एक पुरुष—ऐसे करोड़ों स्त्री और पुरुष इस देश में हैं। उन्हें स्वतंत्रता के साथ प्यार करने का हक मिले। उनकी संतानों को गर्व के साथ अपने आपको भारतीय कहने का हक मिले—इसके लिए हम दोनों बलिदान करेंगे।

चंद्रगुप्त उसके दोनों हाथ पकड़ कर बोले—"छाया!"

छाया ने शांत स्वर में में कहा—"मैं एक अबला होकर जो कुछ कर सकती हूँ—आप पुरुष होकर नहीं कर सकते—? हमें बलिदान करना होगा।"

चंद्रगुप्त दुख के साथ बोले—"यह बलिदान नहीं छाया, यह आत्म-हत्या है!"

छाया ने अपने सिर को ऊंचा करके कहा—"कायर लोग बलिदान को इसी नाम से पुकारते हैं—और मुझे विश्वास है कि आप कायर नहीं हैं। अब जाइये—!"

चंद्रगुप्त सिर झुकाकर बाहर चले गये। छाया पछाड़ खा कर भूमि पर गिर पड़ी। रोती हुई बोली—"आर्य! चांद! तुम गए?"

× × ×

और उसी दिन शाम को चाणक्य अपनी कुटिया में बैठे थे। उनके सामने बैठा था जीवसिद्धि। खुले हुए द्वार में से हर-हर करती हुई गंगा दिखाई देती थी—

चाणक्य ने कहा—"जीवसिद्धि! आज मेरा काम पूरा हुआ आज भारत सुरक्षित है। संगठित है। एक है। आज उसे यूनान से कोई भय नहीं। यूनान उसके चरणों पर आ गिरा है—!"

जीवसिद्धि ने कहा—"हां गुरुदेव! आज सारा संसार भारत की नीतिज्ञता का सिक्का मान गया है और भारत की नीतिज्ञता गुरुदेव की नीतिज्ञता है!"

चाणक्य ने कहा—"लेकिन तुम्हारे गुरु के दिल में जो दुख है उसे क्या कभी कोई समझ सकेगा? इतने वर्ष बीत गए—इतना कुछ किया—लेकिन माया—मेरी माया का पता नहीं लग पाया और पता नहीं क्यों-आज-जब और कोई काम नहीं रहा, मुझे बार बार उस अबोध बालिका की याद आ रही है। वह बिन मां की बच्ची—पता नहीं कहां है-है भी या नहीं—!"

और उनकी आंखों से दो मोटे-मोटे आंसू ढुलक पड़े।

जीवसिद्धि ने जल्दी से उनके पास जाकर कहा—"गुरुदेव!"

इसी समय बाहर से किसी के गाने की आवाज़ आई-

"कहां गया घर बार-
मेरा कहां गया घर बार
सूने सूने गिरि शिखरों पर
सागर के उस पार-
झर झर करके निर्झर गाता
प्रेम का पारावार—
कहां गया घर-बार
मेरा कहां गया संसार......!"

चाणक्य ध्यान से सुनते रहे। बोले—"जीव! कौन गा रहा

है यह गीत ? इसे सुनकर मेरे दिल में पता नहीं क्यों एक तूफान-सा उठता है !"

जीवसिद्धि जल्दी से उठकर बाहर जाता हुआ बोला—"मैं अभी पता लेकर आया गुरुदेव !"

और वह गीत अब भी सुनाई देता रहा—

"कहां गया घर बार—
मेरा कहां गया संसार—"

जीवसिद्धि ने वापस आकर कहा—"एक भिखारिन लड़की है गुरुदेव ! नाम है सुनेत्रा। उसके साथ एक बूढ़ा भिखारी दारुक ! गीत सुनना हो तो उन्हें यहां ले आऊं !'

चाणक्य ने क्षीण स्वर में कहा—"यहां—ले आओ !"

और जब सुनेत्रा अंदर आई तो चाणक्य ने ध्यान से उसकी ओर देखा, विशेषतया उसके दाएं गाल के दो काले तिलों को—और चौंककर खड़े हो गए। जल्दी से बोले—"तुम—तुम कौन हो ?"

सुनेत्रा ने डर कर कहा—"मेरा नाम सुनेत्रा है महाराज !"

दारुक भी डरे हुए स्वर में बोला—"यह मेरी बेटी है ब्राह्मण देवता—हम दोनों भीख मांगते फिरते हैं।"

चाणक्य सुनेत्रा की ओर देखते ही बोले—"तुम्हारा और नाम भी है क्या—?"

सुनेत्रा ने डरकर कहा—"मेरा—और नाम ! और नाम क्या ?"

इसी समय कुटिया के बाहर शोर-सा हुआ। एक आदमी ने अन्दर आते हुए कहा—"सुनेत्रा खतरे में है। मैं उसे बचाऊंगा—तुम मुझे रोक नहीं सकते—मैं उसे बचाऊंगा—!"

चाणक्य ने कहा—"शांत युवक—! सुनेत्रा को कोई खतरा नहीं है। तुम क्या चाहते हो ?"

युवक ने उनको देखा । चौंककर एक कदम पीछे हट गया। तब हाथ जोड़ कर बोला—"आप—महामंत्री! मैं नहीं जानता था यह आपकी कुटिया है।" तब वह सिर झुकाकर बोला—"महामन्त्री के चरणों में सेनानायक वन्धु का प्रणाम। —यह बूढ़ा दारुक इस सुनेत्रा पर अत्यधिक अत्याचार करता है। उस से भीख मंगवाता है। नाच नचवाता है। और कोई अच्छा सा ग्राहक देख कर इसे बेच देना चाहता है!"

चाणक्य ने कहा—"ओह समझा—दारुक। तो यह तुम्हारी बेटी नहीं है?"

दारुक ने भयभीत स्वर में कहा—"आप—आप चाणक्य चाणक्य हैं—आप के सामने झूठ नहीं कहूंगा। यह मेरी बेटी नहीं है।"

चाणक्य अब भी सुनेत्रा के गाल पर बने उन दो तिलों को देख रहे थे। गरज कर बोले—"चुप बदमाश! यह तुम्हारी बेटी नहीं है। चाणक्य के सामने झूठ बोलने का परिणाम क्या होता है—जानते हो?

दारुक ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज!"

चाणक्य बहुत शीघ्रता से सांस ले रहे थे। बोले—"जीवसिद्धि, जाओ सम्राट को बुला कर लाओ—मैं आज न्याय चाहता हूँ। चन्द्रगुप्त के राज्य में मुझे न्याय चाहिए—!"

जीवसिद्धि जल्दी से चला गया।

चाणक्य फिर गरज कर बोले—"अब भी बोलो दारुक! अब भी समय है!"

और फिर सुनेत्रा की ओर देख कर बोले—"सुनेत्रा! याद करो—सोचो—क्या तुम्हारा नाम कभी माया नहीं था?"

सुनेत्रा ने उनकी आंखों में देखते हुए कहा—"माया—माया—ऐसे मालूम होता है जैसे यह नाम मैंने कहीं सपने में

है। किसी ने बहुत प्यार से कहा था—माया!"

चाणक्य ने दारुक के बाल पकड़ लिए। उनकी आंखों से आग बरसने लगी। चिल्लाकर बोले—"बोलो दारुक! बोलो—यह लड़की कौन है?"

दारुक भय से पीला पड़ गया। हाथ जोड़कर बोला—"क्षमा—क्षमा महामंत्री!"

चाणक्य उसके बाल छोड़कर उसे धक्का देकर बोले—"तब बोल—बोल—यह लड़की कौन है?"

दारुक ने सिर झुकाकर कांपते हुए कहा—"बहुत देर की बात है महामंत्री—स्वर्गीय महाराज पर्वतक के राज्य में—हरिपुर के पास एक पहाड़ी पर एक ब्राह्मण रहता था। सुनेत्रा उसी की बेटी है—!"

चाणक्य पागल हो उठे। दोनों हाथों से मुंह को ढांपकर बोले—"और दारुक! वह अभागा ब्राह्मण मैं हूं—विष्णुगुप्त चाणक्य......!"

सुनेत्रा दौड़कर उनसे चिपट गई। रोती हुई बोली—"पिता जी—पिता जी!"

चाणक्य की आंखों से आंसुओं की अविरल धारा बह रही थी। सुनेत्रा को अपनी छाती के साथ लगा कर—पागलों की तरह उसका सिर—हाथ—माथा चूमते हुए उन्हों ने कहा——"बेटी—मेरी बेटी—माया!"—और वह छत की ओर देखकर बोले—'देवो! तुम्हारी माया मिल गई!—तुम्हारी माया मिल गई!"—और सुनेत्रा को छाती के साथ चिपकाकर बोले—"माया—मेरी माया!—तुम्हें कितना दुःख हुआ—तुम्हें कितना दुःख हुआ—तू गलियों और बाजारों में भीख मांगती फिरी—भारत साम्राज्य के महामन्त्री की बेटी—।"

इसी समय चन्द्रगुप्त शीघ्रता से अन्दर आए। आते ही

बोले—"गुरुदेव !"

चाणक्य पागलों की तरह जोरों से बोले—"मेरी बेटी मिल गई चन्द्रगुप्त ! मेरी बेटी माया—!"

चन्द्रगुप्त ने एक बार सुनेत्रा की ओर देखा—और तब जल्दी से उसके पाँवों में गिरकर बोले—"मेरी बहिन—मेरी बहिन—!"

चाणक्य उन्हें उठाकर बोले—"उठो चंद्रगुप्त ! इस अभागे आदमी को देखो जिसने मेरी बेटी को चुराया था—!"

चंद्रगुप्त ने दारुक को देखा—वह भूमि पर गिरा पड़ा था। उसका चेहरा सरसों के फूल की तरह पीला था।

चंद्रगुप्त चिल्लाकर बोले—"जीव ! सैनिकों को बुलाओ—इस अभागे आदमी को कुत्तों से नुचवा दो—!"

लेकिन इससे पहले कि सैनिक भीतर आएं—सुनेत्रा ने चाणक्य के पास जाकर कहा—"पिताजी—दारुक को क्षमा कर दीजिए—इसने अब तक मुझे पाला तो है !"

चाणक्य मुस्कराते हुए बोले—"माया ! तुम्हारे पिता ने आज तक किसी को क्षमा नहीं किया, लेकिन आज वह अपने सबसे बड़े विरोधी को क्षमा करेगा—जाओ दारुक ! चले जाओ यहां से—!"

और चंद्रगुप्त की ओर देखकर वह बोले—"सम्राट् ! आज से मुझे छुट्टी मिले। आज मैं वापस जाऊंगा !"

चंद्रगुप्त आश्चर्य से बोले—"छुट्टी, वापस ! कहां जाएंगे आप ?"

चाणक्य बोले—"यह सारा देश जो पड़ा है। ब्राह्मण का काम राज्य को बनाना है। उसे भोगना नहीं। देश को अब कोई भय नहीं रहा। तुम्हारा साम्राज्य सुव्यवस्थित है—अब मैं अपनी बेटी को लेकर जाऊंगा—और इस बंधु को भी—

इसके साथ माया का व्याह होगा--!"

चंद्रगुप्त विषण्ण स्वर में बोले--"और मैं--मैं क्या करूंगा गुरुदेव--आपके बिना ?......"

चाणक्य बोले--"तुम्हें कुछ जानना हो तो इस पुस्तक से जान लेना--यह पुस्तक ही तुम्हारी गुरु होगा--"और उन्होंने चौकी पर पड़े एक बड़े ग्रंथ से कपड़ा हटा दिया। ग्रंथ पर मोटे मोटे अक्षरों में लिखा था--

कौटिल्य अर्थशास्त्र

लेखक

विष्णुगुप्त चाणक्य

चंद्रगुप्त ने श्रद्धा के साथ उसे उठाया। आंखों के साथ लगा लिया और चाणक्य के चरणों में झुक गए।

चाणक्य बोले--"आओ माया--आओ बन्धु--अब हम जायेंगे--!"

और वह कुटिया से बाहर निकल पड़े। एक हाथ माया के कंधे पर रखे हुए दूसरा बन्धु के कंधे पर। चंद्रगुप्त और दूसरे सभी लोग भी बाहर आए।

चाणक्य किसी से बोले नहीं। आगे बढ़े--और गङ्गातट के साथ-साथ चलते गए। उनके सामने सूर्य्य अस्त हो रहा था। उसी की ओर वह बढ़े जा रहे थे।

चंद्रगुप्त कुटिया के बाहर खड़े-खड़े उन्हें देखते रहे। एक वार दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने उस दिशा की ओर प्रणाम किया जिधर चाणक्य जा रहे थे। तब कुटिया के बाहर की भूमि से धूल उठाकर अपनी आंखों से लगा ली। बाकी लोगों ने भी ऐसा ही किया।

और इस [illegible] पर नौका [illegible]

गाने लगा--

"लौट चला तूफ़ान—
वह देखो—लौट चला तूफ़ान—
गरज-गरज कर
बरस-बरस कर—
जग को सारे उथल-पुथलकर—
क्रांति मचा कर—
प्रलय उठा कर—
लौट चला तूफ़ान—
देखो—लौट चला तूफ़ान—!"

और चाणक्य माया तथा बन्धु के साथ चलते-चलते दूर क्षितिज में विलीन हो गए!